वर्ष दूसरा] श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली [खण्ड दूसरा

❀ श्री ❀

स्वामी रामतीर्थ ।

उनके सदुपदेश—भाग १० ।

प्रकाशक—

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग ।

लखनऊ ।

प्रथम संस्करण २००० } —:०:— { अक्तूबर १९२१ आश्विन १९७८

मूल्य डाक व्यय रहित ।

बिना जिल्द ॥=) } फुटकर { सजिल्द ॥।=)

सूचना।

श्री हिन्दी ज्ञानेश्वरी गीता, यह श्री संतशिरोमणि ज्ञानेश्वर महाराज के मराठी गीता भाष्यका सरल हिन्दी अनुवाद है। इसका विज्ञापन ग्रन्थावली के पूर्व भागों में निकल चुका है। कई मास से हमारे स्टाक में नहीं रही थी। अब फिर थोड़ी सी प्रतियाँ आगई हैं, इस लिये प्रार्थना है कि ग्राहकों को इसके मगाँने में शीघ्रता करना चाहिये, अन्यथा हताश होना पड़ेगा। पुस्तक ८०० पृष्ठ में सजिल्द है मूल्य प्रति कापी ३) रु० डाक व्यय अलग।

विशेष सुभीता।

हिन्दी रामवर्षा-जो ग्रन्थावली के तीनों भागों (७-८-९) में अलग २ छपी है और जिसकी सजिल्द कापियों का मूल्य २॥=) होता है, राम वर्षा के प्रेमियों के लिये एक ही जिल्द में बंधवा दी गई है, और मूल्य केवल २) रक्खा गया है। मंगवाने में कृपया शीघ्रता कीजिये।

मैनेजर.

❋ निवेदन ❋

आज लगभग एक मास के पश्चात् श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली के द्वितीय वर्ष का दूसरा तीसरा भाग एक साथ भेजने में हम सफल हुए हैं। इसवर्ष में दीपमालिका (दीवाली) सं० १९७८ तक केवल चार भाग प्रकाशित करने की प्रतिज्ञा की गई थी, जिसके अनुसार तीन भाग तो आप की सेवा में अब पहुँच जायंगे। चौथा भाग भी प्रेस में दे दिया गया है। आशा है कि वह भी दीपमालिका के लगभग प्रकाशित हो जायगा। लीग के जन्मकाल से ही हम यह अनुभव करते चले आरहे हैं कि लीग का एक निजी प्रेस हुए बिना पुस्तकों का प्रकाशन अपनी प्रतिज्ञानुसार करना कठिन ही नहीं बरन् असम्भव सा है, इसी कारण हम गत वर्ष नियत समय पर सारे भाग ग्राहकों की सेवा में न पहुँचा सके, जिसके लिये लीग के कार्यकर्ताओं को जो दुःख हुआ था वह अकथनीय है। इस वर्ष भी जो हम तीन भाग इतने काल के भीतर २ आप लोगों की सेवा में पहुँचा सके हैं, वह भी एक प्रेस की सहायता से नहीं बल्कि दो प्रेसों की निरन्तर सहायता से कर सके हैं। यदि इतने परिश्रम पर भी हम चौथा भाग ठीक दीपमालिका तक नहीं अर्थात् अक्तूबर मास के स्थान पर मास नवम्बर में पहुँचा सके, तो हमें पूर्ण आशा है कि इस थोड़े से विलम्ब के लिये ग्राहकवृन्द अन्तः हृदय से हमें क्षमा करेंगे, और संगठित रूप से अपने उद्योग और सहायता से लीग के कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ाते रहेंगे।

यह हमें दुःख से लिखना पड़ता है कि जैसी सहायता की आशा राम प्रेमियों से हमें थी वह अभी तक पूर्ण रूप से देखने में नहीं आई। यद्यपि इस समय ईश्वर कृपा से लीग की अपनी अवस्था तो सन्तोषप्रद है (जो आप को उसकी

वार्षिक रिपोर्ट से, जो अगले नम्बरों में छपेगी, स्पष्ट हो जायगा), और राम की भविष्य वाणी के अनुसार हमें निश्चय है कि लीग द्वारा राम का व्यावहारिक वेदान्त का संदेश घर घर पहुँच जायगा, तथापि यह देख कर हृदय को चोट लगती है कि हमारे स्थाई ग्राहकों में से कुछ महानुभावों ने हमारी प्रार्थना करने पर भी अभी तक अपना नाम ग्राहक श्रेणी में नहीं लिखाया है। उनसे अब सानुरोध प्रार्थना है कि वे शीघ्र अपना नाम ग्राहक श्रेणी में लिखा कर लीग के कार्य में सहायता दें और जहाँ तक हो सके अपने दृष्टान्त से अन्य सज्जनों को भी ग्राहक बना-कर ग्राहक संख्या बढ़ायें जिससे राम के उपदेशों का प्रचार दिन द्विगुणी रात चौगुणी उन्नति पकड़ता जाय।

आज कल भारत वासियों के हृदय में देश सेवा और उस सेवा संबन्धी अपना २ कर्तव्य जानने की तीव्र इच्छा जोश मार रही है, और इस विषय में राम का क्या मत है इसको जाननेकी भी इच्छा विशेष करके राम भक्तों में उठ रही है; इस लिये इन दो भागों में ऐसे व्याख्यान वा लेख अधिक दे दिये गये हैं कि जिनमें भारत की वर्तमान समस्या पर स्वामी जी के विचार स्पष्ट रूप से प्रकट हैं। आशा है कि देश सेवी रामभक्तों के लिये ये भाग अधिक लाभदायक सिद्ध होंगे।

यह तो कई बार स्पष्ट ही किया जा चुका है कि लीग की पुस्तकों का मूल्य लगभग लागत दाम पर अर्थात् यथा शक्ति सस्ते से सस्ते दाम पर रक्खा गया है, और धर्म प्रचार ही इसका मुख्य उद्देश्य है, परन्तु इन पुस्तकों के लिये कई लोग कमिश्न के लिये विवश कर रहे हैं इस लिये लीग के प्रबन्धक मण्डल ने केवल प्रचार के उद्देश्य से निम्न लिखित कमिश्न पास किया है।

विषयानुक्रम ।

विषय	पृष्ठ
हज़रत मूसा का डंडा	१
सुधार	२७
उन्नति का मार्ग	४३
राम ढँढोरा	७०
जातीय धर्म	१०६

अमरीकन प्रोफेसर के वेश में
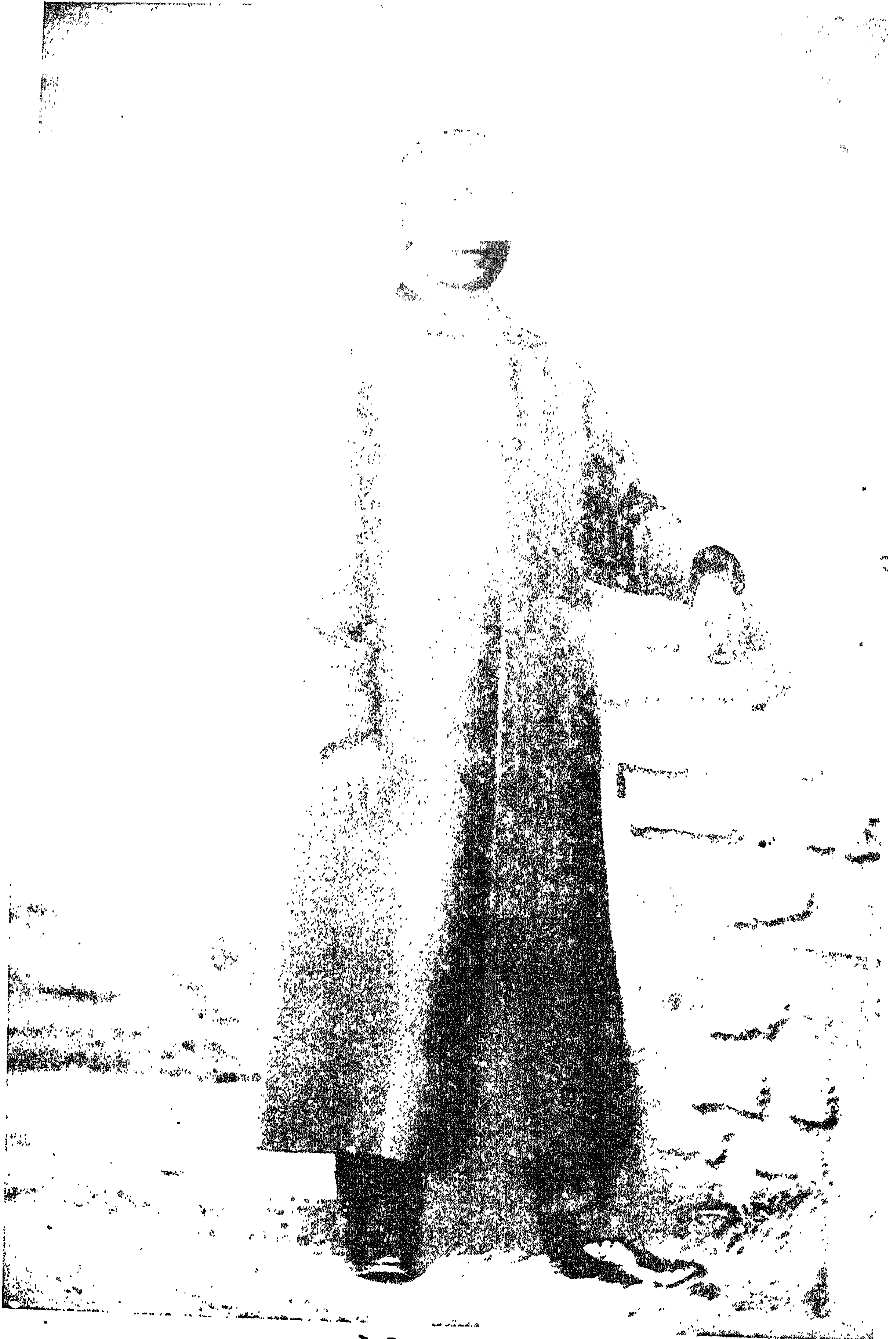
अमेरिका १९०४

*उपनिषद् कहते हैं, "जब कोई सच्चा आनन्द प्राप्तकर लेता है अथवा आत्म-साक्षात्कार कर लेता है, तब उसके कर्तव्य पुण्य रूप हो जाते हैं, और पुण्य उससे अनायास बह निकलता है। यही नियम है। जो आनन्द नहीं प्राप्त करता वह मानव-हित नहीं कर सकता। केवल वही जो निजानन्द को प्राप्त होता है मानव-हित कर सकता है। जब स्वयं आप बड़े गरीब हैं, जब आपके पास ही बिलकुल भोजन नहीं है और भूखों मर रहे हैं, तो दूसरों की भूख आप भला कैसे शान्त कर सकते हैं"?

शिष्य:—महाराज! कृपया मुझे बताइये कि यह आनन्द क्या वस्तु है।

गुरु:—अनन्त वस्तु ही आनन्द है। किसी सान्त वस्तु में आनन्द नहीं है। जब तक आप सान्त हैं, तब तक आपके लिये कोई आनन्द, कोई सुख नहीं है। अनन्त आनन्द है। केवल अनन्त ही आनन्द है।

यह अनन्त, इसे हम कैसे समझें? किसी व्याख्या की ज़रूरत नहीं है। परन्तु राम चाहता है कि इन शब्दों पर आप ध्यान दें, इन पर विचार करें, और अपने मन में निश्चिन्त हो जायँ। फिर वह समय आ जावेगा जब आप इन शब्दों का कि "अनन्त आनन्द है, सान्त में कोई आनन्द नहीं है" स्वयं प्रयोग करेंगे। और इस अनन्त को तुम्हें अवश्य समझना चाहिये।

अंग्रेजी भाषा में "समग्र" (whole) शब्द है। "क्या आप समग्र हैं"? इसका अर्थ होता है—"क्या आप बलिष्ट

---

*छान्दोग्योपनिषद्, प्र० ७ के अन्त में जो गुरु शिष्य सम्वाद है उसी का यह उल्लेख है।

हैं, क्या आप स्वस्थ हैं" : बड़ा सुन्दर शब्द है । जब तक आप अपने को एक अंश मात्र, नन्हा सा, साढ़े तीन हाथ (पौने दो गज) लम्बी और १५० पौण्ड (लगभग पौने दो मन) भारी कोई परिच्छिन्न वस्तु समझते हैं, जब तक आप अपने को केवल रक्त और मांस का पिण्ड समझते हैं, जब तक आप परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) हैं; तब तक आप बिकल वा क्षीन हैं, अवच्छिन्न हैं, विभक्त हैं, समग्र नहीं हैं; तब तक आप केवल एक अंश मात्र हैं, समग्र नहीं हैं, बलवान वा स्वस्थ नहीं हैं; तब तक आप अपने को (गतिहीन बना कर) सड़ा रहे हैं । यदि आप पानी के एक छोटे से बूँद को समुद्र से अलग कर लें तो वह मैला, कुचैला और दुर्गन्धित हो जायगा । इसी तरह से जो मनुष्य, महात्मा या साधु, या कोई भी व्यक्ति अपने को परिच्छिन्न वस्तु समझता है, जो अपने को काल और देश से परिच्छिन्न मानता हुआ परिमित समझता है, जो अपने को छोटे से क्षेत्र में सीमाबद्ध बोध करता है; वह स्वस्थ नहीं है, सुखी नहीं है, समग्र नहीं है, सुख पर उसका कोई दावा नहीं हो सकता। ज्योंही आपकी दृष्टि की परिच्छिन्नता जाती रहती है, उसी क्षण आप का परिच्छिन्न ज्ञान छिन्न-भिन्न हो जाता है और आप फिर समझने लगते हैं "मैं सर्व हूँ, मैं अखिल विश्व हूँ, मैं अनन्त हूँ ।" जब आप ऐसा अनुभव करने लगते हैं, तब आप समग्र हो जाते हैं और शारीरिक रोग, पीड़ा, व्यथा, चिन्ता तब दूर हो जाती हैं, उड़ जाती हैं, और छिन्न-भिन्न हो जाती हैं ।

समस्त चिकित्सा, समस्त आकर्षण (चुम्बकत्व), समस्त वशीकरण (Mesmerism) का रहस्य यही है । तू अपने को समग्र निश्चय कर, फिर वास्तव में समग्र

तू है। यही तत्त्व है। इसी तत्त्व में वास कर, अनुभव कर कि "मैं समग्र हूं," "मैं सर्व शक्तिमान हूं," "मैं परमेश्वर हूं।"

शिष्य—इस अनन्त का क्या स्वरूप है?

गुरू—परिच्छिन्नता तीन प्रकार की है—काल की परिच्छिन्नता, देश की परिच्छिन्नता और वस्तु की परिच्छिन्नता। समग्र होने का तात्पर्य है उस आत्मा का अनुभव जो सम्पूर्ण काल में व्याप्त भी है और सम्पूर्ण देश काल वस्तु की सीमा से पार टपा हुआ भी है। जहाँ (या जिस अवस्था में) एक अपने से अतिरिक्त न कुछ देखता है, न कुछ सुनता है और न कुछ जानता है, वहाँ (या वह अवस्था) अनन्त है, क्योंकि जब तक अपने सिवाय कोई दूसरी वस्तु भान होती है, तब तक आप सीमाबद्ध और सान्त हैं।

जहाँ (या जिस अवस्था में) एक अपने से अतिरिक्त अन्य देखता, सुनता या समझता है, वहाँ (या वह अवस्था) सान्त व परिच्छिन्न है। प्रेतात्माओं को देखना व सुनना, या पित्र लोक के घण्टे (अनाहद वाणी) सुनना, या जिसे दिव्य दृष्टि कहते हैं, यह सब सान्त व परिच्छिन्न है। तुम आत्मानुभव के पथ पर तो हो, परन्तु अभी तक तुम उस अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँचे हो जहाँ अनन्त के अतिरिक्त कुछ और दिखाई नहीं पड़ता, अनन्त के सिवाय कुछ और सुनाई नहीं पड़ता। अनन्त अमरत्व है, और सान्त मरणत्व है।

शिष्य—भगवन्! अनन्त का वास किस देश व काल में है?

गुरू—अपनी ही महिमा (विशालता) में—महिमा में भी नहीं।

तात्पर्य यह है कि अनन्त देश और काल से परे है। तो फिर आप अनन्त को काल और देश के अन्तर्गत कैसे ला सकते हैं? अनन्त कहाँ रहता है, ऐसा प्रश्न करना इस कथन के समान है, "मुझे तोला भर समुद्र को लहरें ला दो।" समुद्र की लहरों की नाप तोलों और छटङ्कियों से नहीं हुआ करती। इसी तरह, कैसे, कब और क्यों, से अनन्त का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। अगर लगाया जा सके तो वह अनन्त ही नहीं।

राम से जो पूछा गया था वह यह था कि सब आकांक्षाओं और अनुरागों के त्याग का उपदेश देकर वेदान्त घृणा (द्वेष) की शिक्षा देता है। परन्तु यह बात नहीं है। वेदान्तके शब्दोंपर ध्यानदीजिये, "लव(Love)और अटैचमेंट (Attachment)अर्थात् राग और मोहको छोड़दो।" किन्तु आप का कहना है, "अरे, यदि हम लव (Love) को छोड़ देते हैं, तो हमने ईश्वर को छोड़ दिया, क्योंकि लव (Love) ईश्वर है।" अरे भाइयो! इसदेश में लव (Love) का अर्थ है कामुकता, स्टुपिडिटी (Stupidity), न कि शुद्ध प्रेम।

भारत में (Stupidity) के लिये एक उपयुक्त शब्द है, मूढ़ता। लोग कहते हैं, "वह लव (Love) है।" भाई, यह कदापि लव (Love) नहीं है, यह तो एक घोर निन्दनीय चीज़ है। राम के लिए सत्य से अधिक आदरणीय और कुछ नहीं। समस्त व्यक्तिगत अथवा शरीरगत अनुराग आपको सान्त कर देता है और अनुराग-पात्र को भी सान्त बना देता है। इस तरह दोनों का पतन होता है, तुम्हारा भी और अनुराग-पात्र का भी। वेदान्त आप से कामुकता, मूर्खता और सब आसक्तियाँ छोड़ देने को

कहता है, वह यह नहीं चाहता कि तुम सच्चे प्रेम को छोड़ दो। वह सच्चा प्रेम तुम्हें नहीं छोड़ना होगा।

बच्चे की बात ले लीजिये। क्या बच्चा प्रेमी है? नहीं, नहीं। बच्चा प्रेमी नहीं किन्तु प्रेम स्वयं है। वेदान्त यही कहता है, "प्रेमी न बनो, परन्तु स्वयं प्रेम बनो।" अच्छा, बच्चे को कौन सी वस्तु आकर्षक बनाती है? उसका प्रेमी होना नहीं बल्कि स्वयं प्रेम होना। लड़के को किसी से प्रीति नहीं होती, कोई आसक्ति नहीं होती, कोई व्यक्तिगत स्वार्थपरता उसमें नहीं होती, परन्तु बच्चा स्वयं प्रेम होता है। और यही वेदान्त सिखाता है, "स्वयं प्रेम रूप हो जाओ, तभी तुम आकर्षक बनोगे, समग्र हो जाओगे।"

लोग अपने को स्वस्थ बनाने और दूसरों को चङ्गा करने के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा करते हैं। किन्तु कृपा करके उन सब स्वार्थमय उपायों और अभिप्रायों को दूर हटा दीजिये जो आपको परिच्छिन्न रखते हैं। सब वासना राग है, सब वासना व्यक्तिगत या शारीरगत प्रेम है, सब वासना आसक्ति है। इसे फेंक दो और स्वयं पवित्रता रूप हो जाओ। अगर आप इसे (पवित्रता को) प्राप्त कर लें, तो आपका शरीर अवश्य स्वस्थ होगा। आपकी बुद्धि अवश्य पूर्ण स्वरूप होगी, यदि आप उस पवित्रता को प्राप्त कर लें जिसकी शिक्षा वेदान्त देता है। यह पवित्रता ही वास्तविक वैराग्य है, जिसकी शिक्षा बार २ वेदान्त से मिलती है।

इस पवित्रता को प्राप्त करो। क्या बच्चा पवित्र नहीं है। वह किसी वस्तु से भी कोई मतलब नहीं रखता। उस नन्हे से ज़ालिम पर ध्यान दो। वह बलिष्टतम कन्धों पर

चढ़ता है और विजय-माल-भूषित शिरों के बाल नोचता है। वह कैसा ज़बरदस्त चुम्बक है। कारण क्या है? पवित्रता। यही (पवित्रता) बच्चे को चुम्बक बनाती है और यही बच्चे को इतना सुन्दर बनाती है। इसीलिये वेदान्त कहता है, "इस त्याग को प्राप्त करो, और तुम स्वयं प्रेमरूप हो जाओगे। और तब आप से आप स्वभावतः तुम से सम्पूर्ण मानव जाति के हित की धारा बहेगी। यदि हम लोक-हित करना चाहें तो हम तभी कर सकते हैं, जब हम स्वयं हित स्वरूप बन जाते हैं। इसके बिना हम से स्वाभाविक रूप में वैसा अनायास प्रकाश नहीं बह निकलता जैसा जलते हुए दीपक से प्रकाश निकलता है।

ध्यान दो। साँप के नेत्र मोहन हैं, वे चुम्बक हैं; और छोटी २ चिड़ियाँ आपही उड़कर साँप के मुख में चली जाती हैं। सर्प की आँखों में यह मोहनी शक्ति क्या है? उन नेत्रों से तो तटस्थता (बेपरवाही) प्रकट होती है। उनमें किसी वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं है। और आप कहावत जानते ही हैं कि "साँप के से बुद्धिमान बनो"।

चुम्बकता, शक्ति, स्वस्थता और हरेक बात की यही पूरी कुञ्जी है। यह सही है कि देखने में सर्प कभी २ अपने ही बच्चों को उनकी रक्षा के लिए निगल जाता है, दूसरे शब्दों में साँप अपने बच्चों को उनकी रक्षा के लिये अपने मुख में रख लेता है, किन्तु वह प्रायः अपने बच्चों को खा लेता है। साँप सैकड़ों बच्चे पैदा करता है। यदि वे सब बच्चे जीते रहें तो संसार रहने के योग्य न रह जाय। किन्तु प्रकृति ने संसार की रक्षा की व्यवस्था की है, और सर्प अपने बच्चों को खा लेता है। साँप एक ऐसा जन्तु है जिस

में किसीप्रकार का मोह नहीं है। साँप अपनी केंचुल उतार देता है। उसे अपनी खाल का भी मोह नही है । ऐसे ही राम कहता है, यदि तुम मन से वेदान्तिक चेतनता का अनुभव कर सको और देह को यथार्थ में दूर कर सको, मानों वह कभी थी ही नहीं; यदि तुम उसे दूर फेंक सको और अनुभव कर सको कि "मैं दिव्य हूँ, सर्वरूप हूँ, वा परमात्मदेव हूँ"; यदि तुम अनुभव कर सको कि "मेरा इन्द्रियों से, व्यक्तित्व से, कोई भी वास्ता नहीं है; तो तुम अनन्त वस्तु हो जाते हो; तब तुम चुम्बक हो जाते हो । वेदान्त कहता है, यदि तुम यह अनुभव करो, यदि तुम पूरे पवित्र हो जाओ, तो तुम चुम्बक हो जाते हो। और यह चुम्बक क्या ? तुम प्रेम का केन्द्र रूप तत्त्व हो जाते हो, और फिर आपही आप तुम से कल्याण (लोकहित) बहने लग जाता है।

पुनः क्या तुम इस अपनी सब आसक्ति में यह नहीं देखते कि यह इनकार नहीं किया जा सकता, कि तुम अपने इन अनुरागों और भावों को उलटा पढ़ रहे हो, अर्थात् उन का उलटा अभिप्राय निकाल रहे हो, और जब तुम अपने को रागासक्त बताते हो, तब तुम वास्तव में द्वेषासक्त हुए होते हो। इसलिये वेदान्त जब कहता है, "राग को त्याग दो" तब उससे यह समझना चाहिये कि "द्वेष को त्याग दो"। यह बात खूब समझ लेने की है । जब कभी तुम किसी एक से लगन लगाते हो, तब तुम एक वस्तु से तो संयुक्त हो जाते हो, और सम्पूर्ण विश्व से वियुक्त । ऐसा है या नहीं ? जब तक बच्चा प्रेम करना नहीं सीखता, तब तक वह प्रेम स्वरूप बना रहता है, तब तक वह मानो सब से अभेद हुआ होता है। एक मास के बच्चे को चाहे कोई उठा ले, चाहे कोई चूमे चाटे, वह अत्यन्त भला लगता है।

बच्चा उस समय साक्षात प्रेम रूप हुआ होता है, किन्तु कुछ काल के बाद वह समय आता है, जब बच्चे की लगन किसी एकसे लग जाती है। फिर इसका क्या परिणाम होता है? माता-पिता भार हो जाते हैं, बहिन और संगी नहीं भाते, पुराने मित्रों से नाता टूट जाता है, सारा संसार छूट जाता है। सियाना बच्चा कार्य के लिये जाता है, परन्तु वह विकल है; समुद्र-तट पर जाताहै पर उसके लिये वह भी दुःखदायी होताहै, क्योंकि उसकी प्रिया वहाँ मौजूद नहीं है। उस प्रिया की तुलना में सभी चीजें फीकी होजाती हैं। जब आप कहते हैं कि अमुक मनुष्य अनुरागासक्त है, तब यथार्थ में वह सारे संसार से द्वेषासक्त है। जब आप किसी विशेष वस्तु से स्नेह करते हैं, तब अपने को अखिल विश्वसे अलग कर लेते हैं। इसी से वेदान्त कहता है, व्यक्तिगत आसक्ति मात्र का अर्थ है असंसक्ति, वियोग, उसका अर्थ है (बन्धन के कारण) निश्चलता। ऐसी आत्म-हत्या न करो।

वेदान्त कहता है, एक तो यह कामुकता (Cupidity) है और दूसरी यह बच्चा की दशा। बच्चा तो साक्षात् प्रेम था और वह पहली दशा तो कामुकता मात्र थी, इससे अधिक कुछ भी नहीं थी। इस लिये जब वेदान्त कहता है, "अपनी वासनाओं से ऊपर उठो," तब वह तुम्हें मानव-जाति के कल्याण की वस्तु बनाना चाहता है। वेदान्त तुम्हारी शक्तियों को ठीक मार्ग पर लगाता है और तुम्हें मानव जाति से संयुक्त कराता है।

क्या यह तथ्य नहीं है कि सभी उपकार करने वालों का आचरण शुद्ध था और व्यक्तिगत आसक्ति से रहित था? ईसा ने क्या गाँठ जोड़ी थी? नहीं। साधुओं और महात्माओं

ने क्या विवाह किया था ? नहीं । राम विवाह का विरोध नहीं कर रहा है । किन्तु उसका अभिप्राय इससे यह है कि मन की परमात्मा से एकता बनी रहे, अखिल विश्व से आत्मा जुड़ी रहे । कुछ महात्माओं ने विवाह किया था । किन्तु उनके सम्बन्ध पर ध्यान दीजिये । उनका मन बिलकुल निरासक्त और पूर्ण पवित्र था, यद्यपि वे परिवार में रहे और बाल-बच्चेदार थे । जहाँ हमारे शरीर रहते हैं, वहाँ हम नहीं रहते । हम तो वहाँ रहते हैं जहाँ हमारे मन रहते हैं । यथार्थ में हम वहीं रहते हैं, जहाँ हमारे मन रहते हैं । इस लिए हमारे महात्मा देखने में तो गृहस्थाश्रमी होते हैं, पर वास्तव में एक मात्र सत्य से युक्त हुये होते हैं, और प्रकाश में रहते हैं । "मैं सर्वरूप हूं," इस तरह सब स्नेहों आसक्तियों को धीरे २ छोड़ने को कह कर वेदान्त तुम्हें समस्त मानव जाति का हितैषी बनाना चाहता है ।

अमेरिका के छापेखानों से प्रकाशित बहुत से साहित्य अधिकांश चम्बुक शक्ति (Magnetism), मस्मर विद्या वा आकर्षणशास्त्र (Mesmerism), सम्मोहन विद्या (Hypnotism), दिव्य दृष्टि (Clairvoyance), सरीखे अनेक विषयोंकी लम्बी चौड़ी बातें बघारता है । और इस साहित्य का बहुत बड़ा भाग शरीर को स्वस्थ और बलिष्ट रखने तथा रोग-निवारण के विभिन्न उपाय और ढङ्ग को प्रकाशित करता तथा सिखाता है । यह सब बहुत अच्छा है । आशय प्रशंसनीय है । किन्तु कुछ विशिष्ट अपवादों को छोड़ कर ऐसे लेखकों का बहुत बड़ा भाग सत्य से सर्वथा प्रतिकूल सिद्धान्त का स्वाद लेता है, ऐसे सिद्धान्त का कि जो स्वार्थता से युक्त और कलङ्कित होता है, और जो (लेख या प्रकाशन के) अधिकार, कृपा प्राप्ति की जिज्ञासा, और

अपने महत्व-वृद्धि की भावना के स्वर में उच्चारित होता है। और याद रहे, कि यद्यपि ये लोग यथाशक्ति अपनी ओर से कोई कसर बाक़ी नहीं रखते और एक महान् तथा श्रेष्ठ कार्य करते होते हैं; तथापि आप यदि उनकी दुर्बलताओं से साफ़ बचना चाहते हैं, यदि आप असली शक्ति का स्वामी अपने को बनाये रखना चाहते हैं, और सफलता के अभिलाषी हैं, तो आप को पता लग जायगा कि सत्य सर्वथा लोक विरुद्ध है। किसी वस्तु को पाने का रास्ता यही है कि उससे मुँह मोड़ लो। बात यही है, और हम क्या कर सकते हैं। राम तुम्हारे सामने यथार्थ तत्त्व रखता है। तुम आप अपने अनुभव से जाँच लो। पहले चाहे आप अन्य सब तरीक़ों को जाँच लें, और बाद को राम की बातों को जाँचिये, और समय पाकर उनका प्रयोग कीजिये।

किसी वस्तु को पाने का उपाय उसे खो देना है। जो अपने जीवन को पाना चाहता है, उसे उससे हाथ धोना पड़ेगा। राम देखता है कि अधिकांश लेखक इस सत्य को असत्य बताते हैं। यदि आप सफलता चाहते हैं तो अपने को चुम्बक बनाइये, क्योंकि लोहे के कण चारों ओर से चुम्बक की तरफ़ खिंच जाते हैं, और अभिलाषा भी चुम्बक के तुल्य है।

कृतकार्य मनुष्य चुम्बक हो जाता है। यदि तुम्हें चुम्बक बनना है, तो तुम्हें अपने को चुम्बक बनाने की क्रिया करनी पड़ेगी। वह क्रिया क्या है?

यह एक वस्तु है। इसमें एक धन (Positive) तत्व है, और एक ऋण (Negative) तत्व भी। दोनों ही जमा हैं। दोनों ही इसमें हैं। परन्तु चुम्बक में इनका क्या हाल

है ? जहाँ दोनों तत्वों का समावेश है वहाँ आकर्षण शक्ति नहीं है । ऋण तत्व से रहित धन तत्व चुम्बक में है । धन तत्व इस ओर बटोरता है, और ऋण तत्व दूसरी विरुद्ध ओर । और तब शक्ति, हजरत मूसाके डण्डेकी तरह, जिससे कि उन्होंने लाल समुद्र (Red Sea) के जल को विभक्त कर दिया था, पूर्णता प्राप्त करती है । ऐसे ही जहाँ भिन्न २ तत्त्व हैं चुम्बक तैयार करने के लिए उन्हें ध्रुवों में स्थित करना होगा । इसी भाँति तुम्हें ध्रुवों में स्थित होना है, और तब तुम चुम्बक हो जाओगे । अच्छा, वेदान्त क्या कहता है ? त्याग या वैराग्य का उपदेशक वेदान्त केवल मूसा के डण्डे के, (मूसाके सुन्दर डण्डेके) समान है । वह अनाज को भूसी से अलग कर देता है । वह नीच प्रकृति को उच्च प्रकृति से पृथक कर देता है । वह (नीर क्षीर का) विवेक करता है । वह आप को इस योग्य बनाता है कि आप अपने ईशत्व को अपनी पशु प्रकृति से अलग कर सकें । ध्यान दीजिये । सब आसक्ति पूर्ण अनुरागों का कारण आप में परिच्छिन्न प्रकृति है । अपरिच्छिन्न को किस वस्तु की कामना हो सकती है ? सब अभिलाषाओं में परिच्छिन्नता वा परिमितता गर्भित है । अपरिच्छिन्न को आकांक्षा नहीं हो सकती । अपरिच्छिन्न के लिए अपने सिवाय कुछ और है ही नहीं, क्योंकि जो कुछ भी है वह सब वही है । तो अपरिच्छिन्न फिर कामना कैसे कर सकता है ? केवल परिच्छिन्न जीव ही कोई अभिलाषा कर सकता है । इस तरह आप समझ सकते हैं कि आपकी सब इच्छाओं और अनुरागों की उत्पत्ति आपकी परिच्छिन्न प्रकृति, आपके माया-तत्व से होती है । आपका अनंत स्वरूप इच्छाओं से परे है । अब आप को मालूम होगया होगा कि आप में

जो यह इच्छा करने वाला तत्व, यह क्षुद्र मिथ्या अहङ्कार है, वह आप में पशु-प्रकृति है, नीच प्रकृति है । और आप में जो परमात्मदेव या अनन्त है वह सब कामनाओं से परे है । इस पर अब वेदान्त क्या करता है ? वेदान्त चाहता है कि आप इन दोनों को अलग कर दें । हरेक चीज़ मिली हुई है । और आप अपने को यह क्षुद्र, स्वार्थी और परिच्छिन्न आत्मा बता रहे हैं । और शुद्ध आत्मा या राम अथवा ईश्वर को आप मिथ्या, देखने मात्र, मायावी और परिच्छिन्न प्रकृति से एक कर रहे हैं ।

वेदान्त कहता है कि जिस पर कैसर (Caesar) की मुहर है वह कैसर बादशाह को दे दीजिये, और जिस पर भगवान की मुहर है वह भगवदर्पण कर दीजिये; अर्थात् मनुष्य का भाग मनुष्य को दे दीजिये, और तद्वत ईश्वर-भाग को राम या ईश्वर के अर्पण कर दीजिये। इन इच्छाओं को, इस असत्यात्मा की यथा योग्य क़दर होनी चाहिए, और समझ लिया जाना चाहिये कि ये कुछ भी नहीं हैं। अपनी ब्रह्म सत्ता का प्रतिपादन करो । अपने को देवों का देव, प्रभुओं का प्रभु और अनन्त समझो । तब फिर मुझे कौन सी अभिलाषा हो सकती है ? मैं तो सब कुछ हूं । वही इच्छा कर सकता है जो सब समयों में नहीं है । मुद्दतों के बाद होने वाली बातों ही की इच्छा हुआ करती है । सच्चे आत्मा के लिए चाहने को कुछ भी नहीं है, क्योंकि वास्तव स्वरूप आप ही सब कुछ है । हर एक वस्तु आप के भीतर है । सचमुच सब वस्तुयें, सब आनन्द, वैभव, हरएक चीज़, जो मनुष्य के लिये काम्य हो सकती है, मैं ही हूं । यही निश्चय करो और ॐ की ध्वनि उच्चारण करो, धुन लगाओ, और फिर यही अनुभव करने का यत्न

करो । तुम्हें अवश्य यह अनुभव करना चाहिए। तुमने आज तक सदा अपने को जड़ देह समझा है, और जड़ देह तुम होगये हो । चैतन्यात्मा (ईश्वर) का विचार करो, ईश्वर में रमो, और तब कामना के लिए जगह कहाँ पाओगे ? यह वेदान्त तुमको चुम्बक बना देता है, धन और ऋण के ध्रुव पृथक किये जाते हैं और शरीर आकर्षणशक्ति सम्पन्न होजाता है ।

अब कुछ अति महत्त्वपूर्ण विषय है । लोग भूल से कहा करते हैं कि अमुक २ वक्ता में व्यक्तिगत आकर्षणशक्ति बहुत अधिक है । केवल उसी आकर्षणशक्ति की आपको आवश्यकता नहीं है। एक मनुष्य विचार रूप चुम्बक बनना चाहता है, दूसरा दौलत बटोरने का चुम्बक बनने की इच्छा रखता है, तीसरा सौन्दर्य, शारीरिक कांति का चुम्बक होने का अभिलाषी है, अन्य पुरुष और प्रकार का चुम्बक होना चाहते हैं; किन्तु इन सब आकर्षणशक्तियों का रहस्य त्याग है । इन शब्दों पर ध्यान दो । सच्चे त्याग के सिवाय दूसरा कोई रहस्य नहीं है । पूर्ण स्वास्थ्य की शिक्षा देने के लिए तुम्हें पुस्तकें छपाने में अपना समय न गंवाना चाहिए । यदि तुम इन शब्दों को मन में रख सको और इनके अनुसार कार्य कर सको तो तुम बड़े भारी चुम्बक हो सकते हो । ये बातें राम तुम्हें स्वानुभव से बता रहा है । आप इनकी परीक्षा करें । विचार का चुम्बक बनने के लिये, जिस से हम सब विचारें अपनी ओर खींच सकें, क्या ईश्वर-प्रार्थना से काम चलेगा ? "ऐ सर्व-शक्तिमान प्रभु ! मुझे प्रकाश दो; हे भगवन् ! तू प्रकाश स्वरूप है, मुझे प्रकाश दे" अरे ! क्या यह कहने से तुम प्रकाश स्वरूप बन जाओगे ? नहीं, इससे काम नहीं चलेगा ।

"ओ, मुझे प्रकाश चाहिए," इससे काम नहीं चलेगा। याद रक्खो, जैसा हम विचारते हैं, वैसे ही होजाते हैं। यदि आपका विचार इस प्रकार का है, "मुझे प्रकाश पाना है", तो क्या नतीजा होगा? आप में इस विचार की पूर्णता का फल यह होगा कि आप उस स्थिति में पहुँच जायँगे जहाँ से प्रकाश सदा दूर रहता है। "मुझे प्रकाश दो", इस प्रकार प्रकाश पाने का विचार प्रकाश माँगने और चाहने में आपको प्रकाश से दूर कर देता है, और नतीजा यह होगा कि प्रकाश आपके पास कभी न आवेगा; वह सदा दूर रहेगा।

राम कहता है, धनी माँ-बाप के लड़के पर ध्यान दीजिये। आप कहते हैं उसका जन्म-अधिकार एक करोड़ है। परन्तु वह अपना पैदायशी हक़ कब पाता है? बहुत दिन उसे ठहरना पड़ेगा। वह हर घड़ी अपनी माता की मृत्यु की कामना किया करता है ताकि वह अपना जन्म-स्वत्त्व पावे। इसी तरह जब हम परमेश्वर से प्रार्थना करें और कहें, 'ऐ प्रभु, मैं तुम्हारा पुत्र हूं, और पुत्र होने के कारण, ऐ भगवन्! मुझे यह दे और वह दे" तो हमें परमेश्वर की मृत्यु तक ठहरना पड़ेगा। परन्तु परमेश्वर कभी मरता नहीं, और तुम कभी अपना जन्म-स्वत्त्व न पाओगे। अपने आस पास से प्रकाश और विज्ञान पाने का यह ढंग नहीं है। प्रार्थना करने, माँगने, चाहने, या ढूंढ़ने से कभी किसी को कुछ नहीं मिला।

यह बड़ा आश्चर्यजनक वर्णन है। तत्त्वज्ञान इसे सिद्ध करता है। शक्ति क्या है? प्रकाश पाने की इच्छा को भी त्याग देना ही शक्ति है। जब तक तुम प्रकाश की इच्छा

किया करते हो, तब तक वह तुम्हारे चुङ्गल से चम्पत होता रहता है। क्या मुझे ज्योति प्रकाश को अपने पास बुलाना चाहिये। माँगने और चाहने से मैं ज्योति को रोक देता हूँ। माँगने और चाहने की क्रिया ही ज्योति मात्र को तुम से दूर कर देती है।

राम एक बड़ी मनोरञ्जक कहानी कहेगा। भारत में एक मनुष्य अपनी प्रिया को पाने के लिए एक मन्त्र सिद्ध कर रहा था। किन्तु मन्त्र जपने को जिस साधु ने उसे बताया था उसने कह दिया था कि एक बात से सावधान रहना। किस बात से ? साधु ने कह दिया था कि मन्त्र जपते समय बन्दर का ध्यान या विचार कभी न मन में लाना। उस मनुष्य ने मन्त्र जपना शुरू किया, और बड़ा यत्न करने लगा कि बन्दर का ध्यान न आवे। परन्तु जब २ वह साधना करता था, तब तब बन्दर का ध्यान उसे आ ही जाता था। बन्दर का ख़याल वह दूर न कर सका। बन्दर हर क्षण उसके सामने ही बना रहा। बन्दर का खयाल लाये बिना वह एक क्षण भी मन्त्र न जप सका। वह साधु के पास गया और बोला, "महाराज! महाराज!! आप ने मुझे यदि बन्दर का विचार न करने को चिता न दिया होता तो मैं मन्त्र जप सकता और बन्दर का विचार कभी न करता होता। किन्तु जब आप ने रोका कि मुझे बन्दर का ख़्याल न आये, तब से वह अब मुझे धर दबाता है, बल्कि घेरे रहता है। इसी तरह अज्ञान को दूर रखने के यत्न से ही अर्थात् मूर्खता और दुर्बलता को पास न फटकने देने की चेष्टा से ही आप दुर्बलता और अज्ञान को ला बैठाते हैं।

प्रकाश उसी तरह आता है जिस तरह सूर्य या नक्षत्रों से प्रकाश आता है। वेदान्त कहता है प्रकाश (ज्ञान) को माँगना और चाहना छोड़ दो, प्रकाश की यह कामना अपने से निकाल दो, इसे त्याग दो, हटा दो, और तब देखो कैसा आनन्द है। तत्त्व का अनुभव करो, प्रकाश चाहे आवे या न आवे, मुझे इस विचार से कोई मतलब नहीं है; "अरे, मैं तो सृष्टि का सूर्य हूँ, मैं तो विश्व का प्रकाश हूँ", ऐसा अनुभव करो। इस विचार में तुम अपने को प्रेमी नहीं बल्कि स्वयं प्रेम मूर्ति पाते हो। इस विचार में तुम प्रकाश की कामना या भिक्षा नहीं कर रहे हो, क्योंकि तुम स्वयं प्रकाश होते हो। मैं शरीर या मन नहीं हूँ, प्रकाश तो क्षुद्र व्यक्ति अर्थात् केवल तुच्छ अहंकार को चाहिये। तुम अहंकार नहीं हो, तुम तो यथार्थ में स्वयं प्रकाश हो। ऐसा मनन करो, ऐसा अनुभव करो, और तुम कामनाओं से ऊपर उठ जाओगे।

हिन्दुस्तानी भाषा में एक सुन्दर पद्य है जिसका अर्थ है, "तुम शहत (मधु) हो, शहत; कोई इच्छाएँ (तुम में) नहीं हैं, किन्तु सम्पूर्ण इच्छाओं से परे हो"।

यह निजी अनुभव की बात है कि राम ने जब कभी किसी भी विषय को विचारने की चेष्टा को, चाहे जितना भी मन लगाया, लाख चेष्टा करने पर भी राम सफल नहीं हुआ। अन्त में जब अनायास मन उपराम हो गया और राम ने कहा, "हटाओ भी झगड़ा, मैं इस लेख (विषय) का नाम भी न लूँगा, मेरी बला से लिखा जाय या न लिखा जाय" तभी यकायक यह विचार आ गया, "अरे क्यों, किस लिए प्रकाश के निमित्त छटपटाता है? इच्छा को

छोड़, उसे दूर फेंक, और आकांक्षा न कर" । तब प्रकाश आ गया, अर्थात् ज्ञान प्राप्त हो गया ।

विश्व-विद्यालय की उच्च कक्षा में पढ़ते समय राम ने सब काम अध्यापकों की सहायता बिना ही करने की शपथ ली थी । यह बड़ी कठिन बात थी क्योंकि टीकाओं या अध्यापकों की सहायता बिना गणित के कठिन सवाल हल करने का भार स्वयं अपने ऊपर लाद लिया गया था । कठिन२ सवाल हल करने में राम भारी परिश्रम करता था । किसी२में वह सफल होताथा, परन्तु अधिकांश में असफलता ही हाथ लगती थी । संध्याके पाँचबजे से सवेरे पाँचबजे तक राम ने श्रम किया, फिर भी सवाल हल नहीं हुए, उपराम होकर ताज़ी हवा खाने के लिये राम धुरकोठे पर चला गया, और चाकू से आतम-हत्या कर डालने की बात सोच रहा था, क्योंकि जिन सवालों को उसे हल करना था उन को अभी तक नहीं हल कर सका था । ऐसे समयों पर, जब राम शरीर को भूल जाता था, वे सवाल आप से आप हल हो जाते थे । इस तरह हम देखते हैं कि कठिन मामलों में जब हम विचार से ऊपर उठ जाते हैं, तब हम अपने को विचार का चुम्बक बना लेते हैं । आज कल राम क्या करता है ? पहली बात तो यह कि ऐसा वैसा करने के समग्र विचार को दूर हटाता है । "मैं कुछ नहीं लिखना चाहता; दुर, दुर, मुझे इससे मतलब ही क्या है; मैं प्रकाश हूँ और अपनी ही महिमा को भोग रहा हूँ; मेरी अपनी ही महिमा का भोगना सफलता है, असली सफलता है, और अन्य सब बातें धोखे की टट्टी हैं; यदि सांसारिक सफलता मुझे प्राप्त भी हो, तो मैं उसे कभी न भोगूँगा; ब्रह्म ही मेरा

सब तरह का आनन्द है"। यही विधि है। ब्रह्म-ज्ञान के अधिकारी बनने की चेष्टा करो, और सब बातें आप ही आ जायँगी। पहले अपने भेद को पहिचानो, अन्य सब बातें पीछे २ आ जायंगी। विचार यह है, "मुझे इससे या उससे कोई प्रयोजन नहीं है, किसी ज़िम्मेवारी या भय से मेरा कोई सरोकार नहीं है, मैं किसी के प्रति उत्तर-दाता नहीं हूँ, मुझे किसी का कुछ देना नहीं है, मैं स्वयं ही हूँ, मैं प्रकाश हूँ"।

संसार तुम्हें क्या आनन्द दे सकता है? सम्पूर्ण आनन्द, सम्पूर्ण सुख, आपके भीतर से आता है। शुद्धात्मा (शुद्धस्वरूप) ही सम्पूर्ण आनन्द है, सम्पूर्ण महिमा है, सम्पूर्ण सुख है। मैं सदा उसका भोग करूंगा। यदि मैं ये (लौकिक) वस्तुयें पाऊँ, और उन्हें न भोगूं, तो क्या होगा? नतीजा यह होगा कि मेरा मन विचारों और भावनाओं से परिपूर्ण होजायगा। भावनायें तुम्हें तलाश करेंगी। यही नियम है। इस तरह से हम देखते हैं कि विचार का चुम्बक बनने के लिये (ज्ञान) की कामना से ऊपर उठने की ज़रूरत है, और (प्रकाश) की आकांक्षा से ऊपर उठना ही इस समस्या का ऋण (Negative) पहलू है, और धन पहलू है ऐसा ध्यान धरना कि "मैं प्रकाश हूं, मैं अपनी ही महिमा को भोग रहा हूँ"।

अब दूसरा रहस्य सुनिये। अगर आप चाहते हैं कि मित्र या दौलत आपको मिलें, तो आप को क्या करना होगा? इच्छा से अपनी लगन हटा लो। और समस्या के ऋण पक्ष या भाग (Negative side) को हल करने के बाद धन पक्ष (Positive side) को लो, जो इस प्रकार का

कथन और निश्चय है, "मैं ईश्वर हूं, मैं प्रभुओं का प्रभु हूं, प्रकाशों का प्रकाश हूं, पूर्ण सुन्दरता हूं, पूर्ण आनन्द हूं, पूर्ण सुख मैं ही हूं, मैं सब की परम आत्मा हूं, मैं विश्व का शासक हूं"। ऐसा निश्चय करो, अपने को ईश्वर समझो, संकल्प को बिल्कुल छोड़ दो, और जब चीज़ें आवें तो दूसरी ही दृष्टि से उनको देखो, केवल ईश्वरत्व को भोगो। तब आप दूसरों की दृष्टि में कृतकार्य होते हैं, परन्तु अपनी सच्ची दृष्टि में आप कृतकार्य से भी बढ़कर हैं।

उस दिन आपको बताया गया था कि जब आकाश में (वायु की) विरलता (सूक्ष्मता) के कारण कोई विशेष स्थल (वायु से) शून्य होजाता है, अर्थात् विरल वायु सूर्य-ताप से ऊपर उठ जाती है और शून्यता पैदा होजाती है, तब क्या होता है ? शून्य स्थान को भरने के लिए वायु झपटती है। इसी तरह जब अभिलाषा से ऊपर उठकर आप शून्यता उत्पन्न करते हैं, अर्थात् आपका शरीर शून्य हो जाता है, जब आप ईश्वर भाव में लीन होते हैं, तब शरीर अर्थात् यह आभासमात्र अहंकार, मर-मिट जाता है, यह अपना स्थान खाली करदेता है, और तब क्या होता है ? आपके आस पास के प्रत्येक पदार्थ आपके पास अवश्य झपट कर आते हैं।

कुछ लोगों के मतानुसार चुम्बक की प्रकृति शून्यता के सिवाय और कुछ भी नहीं है। अच्छा ! इच्छाओं को, अर्थात् स्वार्थपूर्ण इच्छाओं को, जो तुम्हारा गला घोंट रही थीं, त्याग देने के कारण यहाँ शून्यता उत्पन्न हुई। इन्हें दूर कीजिये और तब आप चुम्बक हो जाते हैं, अर्थात् शून्य स्थल उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न—क्या रोग को अच्छा करने के लिये यह ज़रूरी है कि पदार्थ (Matter) से वा उस रोगसे इन्कार किया जाय?

उत्तर—रोग को दूर करने के लिए यह ज़रूरी है कि आप अपने को पूर्ण समझें, सब कहीं ईश्वरके सिवाय और कुछ भी आप को न दिखाई पड़े। अपने को ईश्वर समझो और ऐसा खूब समझो, फिर कोई रोग नहीं है। स्वास्थ्य, शक्ति, सब चीज़ें तुरन्त दौड़ती हुई आपके पास आजायेंगी, जब आप इनसे ऊपर उठ जाँयगे। ईश्वरको देखने या सुनने की इच्छा न करो, क्योंकि ईश्वर तो तुम अब भी हो। जब आप ईश्वर को देखने की इच्छा करते हैं, तब ईश्वर को आप अपने से बाहर मान लेते हैं, ईश्वर को दूर कर देते हैं। आप लोक हित करना चाहते हैं, परन्तु संसार इतना दीन क्यों हो कि उसे आप के ध्यान की आवश्यकता पड़े।

निउटन (Newton) ने अपने को चिंतवन (ध्यान) के अर्पण कर दिया था। चिंतवन करना इच्छा से ऊपर उठने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जो विषय उसके सामने था उसमें उसका तुच्छ अहङ्कार लीन हो गया था, और परिणाम यह हुआ कि वह मानव जाति का उपकारी हुआ। मानव जाति का कल्याण करने या मानव जाति को ऋण से दबाने के विचार से उसने समस्या को नहीं हल किया था। उसकी धारणा यह थी अर्थात् उसने अपना कार्य इस लिए किया था कि उस काम से उसे आनन्द मिलता था और वह इस प्रकार लोकोपकारी हो गया।

यदि लोग आपकी प्रशंसा नहीं करते तो कोई परवाह नहीं, यदि आपकी ख्याति नहीं है तो क्या चिंता। संसार की दृष्टि में जो सफलता है वह तो केवल इन्द्रियों की

धोखेबाजी है । तुम तभी सफलता प्राप्त करते हो जब तुम निश्चय करते हो कि "मेरी विराट से, ईश्वर से एकता है, और सफलता मैं स्वयं हूँ ।"

क्या पदार्थ की स्थिति से इन्कार करना चाहिये ? अवश्य । याद रक्खो कि तुम परमेश्वर हो और जिस क्षण तुमने अपने को परमेश्वर समझा, उसी समय पदार्थ की इतिश्री हो गई । पदार्थ को हटाओ, और वहाँ ईश्वर-भाव जमाओ । ये दो भिन्न २ उपाय नहीं हैं । दोनों ठीक एक ही हैं । इसी तरह आप अपने असली आत्मा को परमात्मा पाते हैं, अर्थात् इन सब शरीरों, सूर्यों, वृक्षों इत्यादि का नियन्ता और शासक पाते हैं । जब आप ऐसा निश्चय करते हैं और इससे भी ऊपर उठते हैं, तब और भी बढ़कर निश्चय करते हैं, तो आपको क्या ध्यान होता है ? जब राम चलता है, तब वह समझता है कि वह सूर्य है, और सूर्य इन मेघों और कोहरों को पैदा करता है, इन सब का कारण सूर्य है । कुछ लोग पृथ्वी, जल आदि को इनका कारण बतातेहैं । परन्तु यह ठीक नहीं है । जल, मेघ, कोहरा, सब सूर्य से निकलते हैं । सूर्य उनकी उत्पत्ति करता है, और जब उन्हें कड़ी निगाह से वह देखता है, तब वे (मेघ और कोहरे) विलीन होजाते हैं । इस तरह आत्म-साक्षात्कार की एक दशा तो यह है कि जब आप अपने को सूर्य की भाँति परमात्मा समझते हैं, और दूसरी अवस्था में परिच्छिन्न आत्मा रूपी कोहरों को दूर करदेते हैं ।

लोग कहते हैं, "मैं परमेश्वर की प्रतिमा में बनाया गया हूँ" । राम कहता है, "प्रतिमायें बनो, और तुम हमेशा दुःखी रहोगे" । तुम ईश्वर की प्रतिमा या चित्र नहीं हो, तुम स्वयं ईश्वर हो ।

जल में प्रतिबिम्बित होने वाली प्रतिमाको ले लीजिये। जल में इस प्रतिबिम्बरूप प्रतिमा की अपेक्षा से ही सूर्य सर्वोपरि-आत्मा अर्थात परमात्मा कहा गया है। ऐसे ही आत्म-साक्षात्कार की प्रथम अवस्था में मनुष्य अपने परम स्वरूप (परमात्मा) को सूर्य की तरह समझता है।

नेत्र खोलने और बन्द करने से राम को साधारणतया यह भान होता है कि "सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि सब पदार्थ मैं घेरे हुए हूं। मैं उनको जीवन, शक्ति, और उद्योग प्रदान करता हूं। मैं उनका आधार और आश्रय हूं। मैं ही परम आत्मा हूं।" एक अवस्था यह है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर आप देखेंगे कि सम्पूर्ण घृणा, द्वेष, भय, दूर भाग जाते हैं। फिर आप को यह आशंका नहीं रह जाती, कि आपकी रचनाओं का अधिकार कोई ले लेगा, या उनसे माल मारेगा।

जब लड़का कोई किताब उठा ले जाता है, तो माता को क्या क्षोभ होता है? नहीं। क्योंकि उसी का बच्चा है और उसी की पुस्तक, भला, वह क्षुभित क्यों होगी? इसी तरह यदि कोई मनुष्य तुम्हारी कोई चीज चुरा लेता है, तो तुम डरते क्यों हो? वह मनुष्य और तुम एक हो। और जो वस्तु वह चुराता है, वह तुम्हारी और उसकी दोनों की है। माँगने से तुम्हें सफलता या आनन्द न मिलेगा; लोग जिसे सफलता कहते हैं, उसे सफलता न समझो, वह तुम्हें न चाहिये। तुम्हारा लक्ष्य तो स्वयं परम तत्त्व है। और यदि संसार के दूसरे पदार्थ या सुख तुम्हें आ मिलते हैं, तो तुम्हें कहना चाहिए, कि शैतान! हटो मेरे सामने से तेरे हाथों से मुझे कुछ नहीं चाहिये। तब देखो

तुम कितने सुखी होते हो । तब तुम स्वर्ग स्वयं हो जाते हो, और अपने जीवन को सफल बना लेते हो ।

स्वास्थ्य पाने वा प्राप्त करने के लिये रोग को जीतने के लिए, क्या पदार्थ की स्थिति से इनकार करने की ज़रूरत है ? राम कहता है, नहीं, केवल अपने शुद्ध स्वरूप का मनन करो, और आत्मानुभव की दूसरी अवस्था में अपने को ले जाओ, जिस अवस्था में सूर्य जब ओस या कोहरे की तरफ देखता है तो वे गायब होजाते हैं। इसी भाँति जब दूसरी अवस्था में आप अपने को अनुभव करते हैं, तब आप उस अवस्था में पहुंच जाते हैं जिसमें स्वभाविक द्वैत नहीं है ।

प्राणायाम या श्वाँस की साधना क्या है ? इस बारे में लोग इस साधना पर ज़ोर देना चाहते हैं, परन्तु राम कहता है कि जब आपका मन तत्त्व में लीन या निमग्न होता है तब श्वाँस साधना आपही अपनी फिक्र कर लेती है । जिस क्षण हम उस भावना में डूब जाते हैं और उस दशा में ॐ की धुन लगाते हैं उसी क्षण स्वतः अत्यन्त वाञ्छनीय और यथा सम्भव उत्तम रीति पर श्वाँस क्रिया होने लगती है । फेफड़े श्वासों से भरजाते हैं, और अंतड़ियों के नीचे से भी चढ़कर वे तुम्हें परिपूर्ण कर देते हैं । मुख्य बात है परम तत्त्व का अनुभव करना । यदि वह मौजूद है, तो सब चीज़ें मौजूद हो जाँयगी ।

इस देश में ऐसे लोग हैं जो सुन्दर नेत्र और सुन्दर नाक तथा ठोढ़ी पाना चाहते हैं ।

राम कहता है कि मानसिक शक्तियों को प्राप्त करले ने पर भी तुम परिच्छिन्न और असुखी बने रहते हो । लोग

धन पाने में आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करना चाहते हैं। तब भी तुम परिच्छिन्न रहते हो, अभागे और दुःखी रहते हो।

इस पर ध्यान दो। यदि तुम काम्य वस्तुओं को, सौन्दर्य, वर्ण, दौलत, तन्दुरुस्ती को पाना चाहते हो, तो तुम्हें वेदान्तिक त्याग का अभ्यास करना पड़ेगा, किन्तु पूरा अभ्यास नहीं, केवल आँशिक। इस भाँति जितना आंशिक अभ्यास तुम करोगे वैसा ही आंशिक लाभ उठाओगे। परन्तु आंशिक लाभ से पूरी बात न बनेगी। तो फिर मुख्य मूल स्रोत को क्यों न प्राप्त करो। और तब जिन विशेष पदार्थों को तुम चाहते हो, वे तुम्हारे पास आही जाँयगे। इससे बढ़कर और अन्य सब पदार्थ भी तुम्हें तलाश करेंगे। इस लिये विशेष करके इच्छित वस्तुओं में ही न बँधे रहो; राज-मार्ग पकड़ो। वैकुण्ठ और परमानन्द का सबसे सीधा रास्ता यही अनुभव करना है कि " मैं आज ही स्वयं वैकुण्ठ वा सच्चिदानन्द हो।

आत्मानुभव दो प्रकार से होता है, निश्चय (faith) के द्वारा अथवा ज्ञान (knowledge) के द्वारा। वेदान्त शास्त्र पढ़कर तुम अपने संशयों को दूर कर सकते हो। और आशा है कि इस वेदान्त दर्शन की पूर्ण और सरल व्याख्या बहुत ही शीघ्र राम द्वारा प्रस्तुत करदी जायगी।

यदि वेदान्त शास्त्र पढ़कर तुम्हें आत्मानुभव न हो, तो उसमें निश्चय करो।

जब ईसाइयों को आत्मानुभव की एक झलक दिखाई पड़जाती है, तब यद्यपि उस झलक को वे उसी तरह नहीं

देखते जिस तरह ईसाने देखा था, तथापि उन्हें निश्चय होजाता है कि झलक आत्मानुभव की है। इसी तरह यदि आपको अवकाश और यथेष्ट रुचि हो, तो वेदान्त शास्त्र पढ़ो। अन्यथा राम पर, ईश्वर पर, अपने आप पर, विश्वास करो। तुम्हारा उद्धार हो जायगा। अपनी मुक्ति आप ही प्राप्त करो। कोई दूसरा उपाय नहीं है। *

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

---

* नोट—हजरत मूसा, ईसाईमत में एक पैगम्बर का नाम है जिसे परमात्मा का अनुभव तूर पर्वत की शिखर पर एक प्रकाश की झलक के रूप में हुआ था और उसे यह आकाश वाणी हुई थी कि तू इस अनुभव रूपी दण्डे को हाथ में ले। इस दण्डे को यदि तू समुद्र को भी मारेगा तो समुद्र दो टुकड़े होकर तुझे रास्ता दे देगा। जहाँ भी इसका वर्ताव करेगा वहाँ सफलता प्राप्त होगी।

सुधार।

[भारतधर्म महामण्डल भवन मथुरा में स्वामी राम के दिये हुए व्याख्यान के श्रीनारायण स्वामी द्वारा लिखित नोट।]

——:※—※:——

आज कल संसार में परोपकार का बड़ा कोलाहल सुनाई देता है। यह शब्द प्रत्येक कान में सुनाई देते ही हृदय में जोश सहानुभूति उत्पन्न करता है और सुनने वालों के मनमें सुधार करने का विचार उत्पन्न कर देता है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि परोपकार के यथार्थ अर्थ से तो लोग जानकारी नहीं प्राप्त करते, केवल बाह्य हू हू हा हा की लेक्चरबाज़ी में लग जाते हैं। इसी लिये परोपकार के वास्तविक अर्थ न समझने से और उस पर आचरण (अमल) न करने से सुधारक महाशय से न तो संसार का पूरा पूरा उद्धार होता है और न उसे स्वयं कुछ लाभ प्राप्त होता है। अतः औरों का सुधार करने से पहले सुधार के इच्छुक को पहले सुधार के अर्थ और साधनों से जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। अँगरेज़ों के यहाँ आज कल यह उक्ति रिवाज़ पकड़ती जाती है कि (First deserve & then desire) "पहले अपने को किसी चीज़ के योग्य बनाओ, फिर उसके प्राप्त करने की इच्छा करो।" किंतु वेदांत का इस विषय से सम्बन्ध नहीं।

वेदांत में तो यह सिद्धांत अनादि काल से चला आता है कि (Deserve only & need nct desire) "अपने को किसी वस्तु के योग्य तो निस्सन्देह बनाओ, किंतु उसकी प्राप्ति की इच्छा न करो।" क्योंकि वेदांत पुकार पुकार कर कहता है कि जिन वस्तुओं का तुमने अपने को अधिकारी बनाया है, अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् वह वस्तु आपके पास बिना किसी प्रकार की इच्छा के किसी न किसी द्वारा अवश्य चली आयगी। अधिकारी बनने या होने से कोई और अभिप्राय नहीं है, वरन् इस प्रबंध का स्पष्ट तात्पर्य और उद्देश यह है कि जिस प्रकार से एक मनुष्य छोटे छोटे पदों से उन्नति पाता हुआ एक अवसर पर पहुँच कर राजा का पद पा लेता है, तो उस समय वह अपने राज के समस्त सम्पत्ति, महल और धन धरती के पाने का अधिकारी हो जाता है। अब वह इन वस्तुओं के पाने की इच्छा प्रकट करे या न करे, वस्तुएं उसके सिंहासनासीन होने पर उसकी सेवा करने को अपने आप उसके पास चली आती हैं, वरन् उस समय उसका इच्छा करना अपने आप को छोटा बनाना है और अपने को धब्बा लगाना है। यह एक कहानी है कि एक महात्मा इस बात के अधिकारी हो गये थे कि उनके निकट सांसारिक पदार्थ आन कर उनकी नित्यप्रति सेवा करें. किंतु एक अवसर पर एक व्यक्ति जब उनके लिये बताशों का थाल लाया, तो महात्मा जी ने बताशे लेने की इच्छा करके अपने मुखाबिंद से यह उच्चारण किया कि दो बताशे हमको देदो। इस पर थाल लाने वाले ने दो बताशे तो महात्मा जी को दे दिए, किंतु वह शेष बताशों को उन्हें लालची समझने के कारण वहाँ रखना उचित न समझ कर थाल लौटा ले

गया। इस प्रकार महात्मा जी शेष बताशों से भी वंचित रहे, और इच्छा प्रकट करने के कारण थाल लाने वालों की दृष्टि में भी कम उतरे। इसी तरह अधिकारी होने पर भी अधिकार-योग्य वस्तु की इच्छा प्रकट करना अपने अधिकारों को खोना और अपनी इच्छा को बट्टा लगाना है। भगवन्! यदि आप अपने आपको समस्त वस्तुओं का मालिक और अधिकारी बनाना चाहते हैं, तो उठो, अपने स्वरूप (ذات) में झण्डे गाड़ो, अपने असली स्वरूप में लीन हो जाओ, और अपने असली स्वरूप में मस्त होकर सारे संसार के ईश्वर और मालिक बन जाओ। तुम्हारा अपने स्वरूप में लीन होना ही तुमको सारे संसार का सम्राट बना देगा। यह सम्राट पद केवल संसार का ही नहीं प्राप्त होगा, वरन् तुम्हारा अपने स्वरूप में निवास करना तुम को समस्त लोक और परलोक का सम्राट बना देगा। अपने इस वास्तविक साम्राज्य का सिंहासन सम्हालने पर तुम समस्त धरती और आकाश अर्थात् लोक और परलोक की वस्तुओं के स्वामी और अधिकारी हो-जाओगे। यह केवल असली साम्राज्य पाने की आवश्यकता है। संसार के पदार्थ आदि तो अपने आप तुम्हारी सेवा करने को तत्पर हो जाँयगे, तुमको उस समय इच्छा करने की भी आवश्यकता न होगी। उठो! उठो!! अपने स्वरूप में डेरे लगाओ और विराट स्वरूप के सिंहासन पर आरूढ़ हो, फिर तुम्हारे केवल एक संकेत (کن) से भी सारे संसार के काम पूरे होते चले जाँयगे। परोपकार का उपाय केवल हाहा हूहू ही नहीं है, वरन् सर्वोत्तम परोपकार आत्मा में लीन होना ही है। जैसे विज्ञान के मतानुसार वायु हलकी होकर जब ऊपर को उठती है और

अपना प्रथम स्थान छोड़ देती है, तो इधर-उधर के चारों ओर की भारी और ठंढी हवा हल्की हवा की खाली जगह घेर लेती है, अर्थात् चहुँ ओर की हवा पहली हवा के हल्का होकर उड़ जाने पर एक एक श्रेणी अपने आप उन्नति करती जाती है, इसी प्रकार एक महात्मा के ब्रह्मनिष्ठ होने अर्थात् अपने असली स्वरूप में लीन हो जाने पर ऊपर वर्णित वायु की भाँति शेष चारों वर्णों के लोग बिना किसी प्रकार की इच्छा और प्रयत्न के महात्मा की खाली की हुई जगह को घेरने के लिये अपने अपने दरजों से एक एक दरजा अपने आप उन्नति कर जाते हैं । अतएव अपने आप का अपने स्वरूप में लीन होना अर्थात् निमग्न होना ही परोपकार करना है । तात्पर्य यह कि तुम्हारे मन का अपने सूर्य रूपी आत्मा की किरणों के द्वारा अहंकार रूपी भारी बोझ से शून्य और हल्का होकर अपने स्वरूप में उड़ जाना अर्थात् लीन हो जाना ही संसार के और पुरुषों का सुधारना है, नहीं तो सुधारक महाशय या सुधार के इच्छुक जितना ही अपने वास्तविक स्वरूप से नीचे रहेंगे, उतना ही शेष मनुष्य निचले दर्जों पर रहेंगे और परोपकार करने के अर्थों का मिथ्या वरन् उल्टा व्यवहार करते रहेंगे, क्योंकि अपने स्वरूप में अवस्थान न करना ही दूसरों का परोपकार न करना है, वरन् अपने आप को नीचे गिराए रखना है । इसलिये ऐ सुधार के इच्छुकों ! और ऐ संसार का उद्धार करनेवालो ! यदि संसार का उद्धार करना चाहते हो तो उठो, अपने स्वरूप में लीन हो जाओ, शेष सब लोग अपने आप उन्नति कर लेंगे, या यों कहो कि शेष सब लोगों का बिना तुम्हारी इच्छा और प्रयत्न के अपने आप भला हो जायगा, और तुम में भी जब अपने स्वरूप में निष्ठ होगी तो
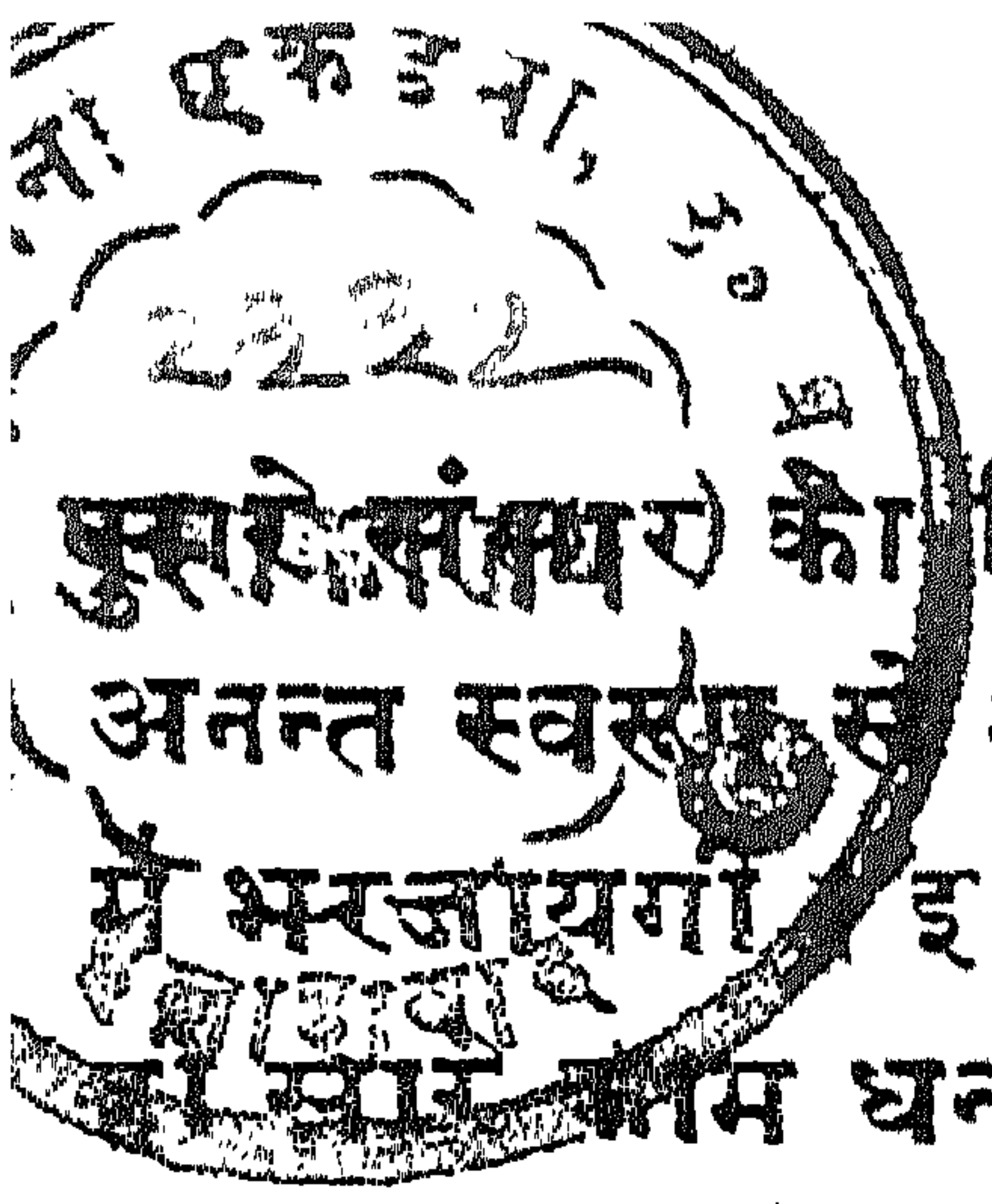
पूरे संसार को हिला देने की शक्ति आजायगी, अर्थात् अनन्त स्वरूप से अभेद होने के कारण अनन्त शक्ति भी तुम में भरजायगी। इसप्रकार तुम्हारा केवल राजगद्दी सँभालना ही सारे काम धन्धे को ठीक कर देता है, क्योंकि बिना असली साम्राज्य के सिंहासन पर स्थित हुए साम्राज्य के काम पूरे नहीं होते, अतः अपने स्वरूपमें लीन होना परोपकार के लिये मुख्य समझना चाहिए, अपने अनन्त स्वरूप से मन को अभेद करने से ही अनन्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। जैसे एक नमक की डली यदि खाली गिलास में डाली जाय तो एक परिच्छिन्न स्थान घेरती है, और जब पानी से भरे हुए गिलास में डाली जाय, तो पानी में घुलजाने से (अर्थात् जल के साथ मिल जाने से) वह डली अपनी परिच्छिन्न जगह छोड़कर ग्लास के समस्त पानी में फैल जाती है और समस्त जल में नमकीन स्वाद देने की शक्ति रखती है, या यों कहा जाय कि जितना ही नमक की डली अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़ती जाती है और पानी में समाती जाती है, उसमें उतनाही स्वाद फैलाने की शक्ति बढ़ती जाती है। इसी प्रकार यद्यपि मन परिच्छिन्न शक्ति का खंड माना गया है, किंतु जितना ही अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़कर अपने स्वरूप के अनन्त सागर से अभेद होता है, उतना ही उसकी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियाँ फैलती भी दिखाई देती हैं, अर्थात् उतना ही मन अपरिच्छिन्न शक्तियाँ प्रकट करने का बल भी उत्पन्न करता चला जाता है। इसी प्रकार से, भगवन! यदि आप अपनी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियाँ प्रकट किया चाहते हैं और उन अपरिच्छिन्न शक्तियों से संसार का उद्धार किया चाहते हैं, तो मन को कैवल्य-स्वरूप में इस

प्रकार लीन कर दो कि जैसे मजनूँ के प्रेम के सम्बन्ध में एक कविने कहा है—

> ख़ूँ रँगे-मजनूँ से निकला फसद लैली की जो ली ।
> इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिए ॥

अर्थात् मजनूँ लैलो के साथ ऐसा अभेद हुआ कि लैली और मजनूँ में बिलकुल अंतर न रहा, बरन् लैली की फस्द लेने पर भी ख़ून मजनूँ की नससे निकला। जितना ही आप अपने को परिच्छिन्न करते जाओगे, अर्थात् नमक की डली की भाँति परिमित शरीर में मन को घेरे रक्खोगे, उतना ही आप अपने को असमर्थ और शक्तिहीन बनाते जाओगे। अतः मनको शरीर के ख्याल से दूर हटाकर आनंद घन रूपी समुद्र में लीन करना ही समस्त अनंत शक्तियाँ प्राप्त करलेना है । जब इसी प्रकार से व्यावहारिक रीति पर मनुष्य तनमय (यूयं वयं, वयं यूयं) होजाता है, अर्थात् जिस समय वेदांत रूप होजाता है, तो पूर्व संकल्प नमक की डली की तरह परिमित स्थान को छोड़कर अपने अनंत स्वरूप में समा जाते हैं, और इस प्रकार सबके साथ अभेद और प्रेममय होने पर समस्त मनोकामनायें बिना इच्छा और प्रयत्न के पूरी होजाती हैं । अपने आत्मा में लीन होने के लिये सुधारक महाशय को पहली आवश्यकता हृदय रूपी पर्दे को ज्ञान रूपी तेल से तर करने और स्वच्छ बनाने की है । जैसे काग़ज़ की तह यदि लैम्प की लाट के आगे रक्खी जाय तो लाट इतनी प्रकाश नहीं करती जितना तेल से भिगोई हुई काग़ज़ की तह उसकी जगह रखने से प्रकाश प्रकट करसकती है (अर्थात् काग़ज़ की तह बिना तेल से भिगोने के अच्छी तरह दीपक

का प्रकाश प्रकट नहीं करसकती, क्योंकि तेल के साथ भिगोने से इसकी तह स्वच्छ और हलकी होजाती) है। इसी तरह हृदय को ज्ञान रूपी तेल से भिगोये बिना आत्मा रूपी ज्योति का प्रकाश बाहर भली भाँति प्रकट नहीं होसकता। अतः ज्योतिके प्रकट करने के निमित्त हृदय रूपी पर्दे को ज्ञान रूपी तेल से तर करने और उससे उसको स्वच्छ बनाने की अत्यंत आवश्यकता है।

विकासवाद की दृष्टि से भी मनुष्य को समस्त सृष्टि पर श्रेष्ठता दीगई है। इसका अधिकांश कारण केवल यही है कि वह चैतन्य शक्ति जो वेदांत में ज्योति के नाम से पुकारी जाती है, जड़ जगत् में प्रकट होना चाहती है, किंतु जड़ जगत में पर्दा अत्यंत मोटा होने से उस (ज्योति) का प्रकाश वहाँ इतना प्रकट नहीं होता जितना कि वनस्पति जगत् में से होता है, इस लिये वनस्पति जगत् की श्रेणी जड़ जगत् से ऊँची मानी गई हैं। और वनस्पति में भी जब वह चैतन्य शक्ति अपने आप को प्रकट किया चाहती है, तो यद्यपि जड़ जगत् की अपेक्षा पर्दा वहां ज़रा कम स्थूल होता है, तौभी कुछ स्थूल होने के कारण वहां वह इतना प्रकट नहीं होती जितना कि प्राणी (चेतन) जगत् में होती है, इसी लिये प्राणियों की श्रेणी जड़ और वनस्पति से बढ़कर मानी गई है। फिर पशुओं में जब वह प्रकाशस्वरूप आत्मा अपना प्रकाश बाहर फैलाना चाहता है, तो यद्यपि उनमें जड़ और वनस्पति की अपेक्षा पर्दा और भी कम स्थूल होता है, मगर तौभी स्थूल होने के कारण उनमें से ज्योतिर्मय सूर्य का प्रकाश उतना भासमान नहीं होता जितना कि मनुष्य में होसकता है, अतः मनुष्यों का दर्जा अन्य समस्त सृष्टि अर्थात् जड़, वनस्पति और प्राणि-सृष्टि से उत्तम

माना गया है। किन्तु विकासवाद केवल यहाँ तक ही अन्त नहीं करता, बरन् आगे मनुष्यों में भी बहुत सी श्रेणियाँ हैं; विशेषतः दो दर्जे मनुष्यों के बतलाए जाते हैं। इन दर्जों के आगे कोई और दर्जा विकासवाद ने आज तक न तो बताया, न स्थिर किया है। मनुष्य को दो बड़ी श्रेणियों में विभक्त किया गया है—एक ज्ञानी की, दूसरी अज्ञानी की। ज्ञानी वह जिनका अन्तःकरण रूपी पर्दा अत्यन्त सूक्ष्म और स्वच्छ है, और अज्ञानी वह जिनका अन्तःकरण स्थूल और मलिन है। जैसे ग्लोबदार लैम्प में दो चिमनियाँ होतीहैं-एक अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ और पतली होती है कि जिसके भीतर से लैम्प का प्रकाश निकल कर समस्त मनुष्यों की आँखें चौंधिया देता है; दूसरी निर्मल और अल्प स्वच्छ तो होती है, मगर पहली की अपेक्षा थोड़ी मोटी और धुँधली होता है जिसमेंसे लैम्पका प्रकाश बाहर प्रकट तो होता है मगर पहले की अपेक्षा बहुत ही हलका होता है। इस तरह ज्ञानी का अन्तःकरण उस अत्यन्त महीन, निर्मल और स्वच्छ चिमनी के समान होता है जिसके भीतर से आत्मदेव की ज्योति ऐसे वेग से बाहर प्रकाशित होती है कि बीच में अन्तःकरण रूपी पर्दा देखने में ही नहीं आता, बरन् असली ज्योति ही आँखें मारती मालूम देती हैं; मगर अज्ञानी का अन्तःकरण उस ग्लोब के समान होता है कि जिसके भीतर तो प्रकाश उसी प्रकार ज़ोर का होता है जैसा पहली चिमनी के भीतर था, मगर बाहर इस ज़ोर से प्रकट नहीं होता जैसे पहली चिमनी से फूट-फूट कर निकलता था। अर्थात् जिसमें से पहले की अपेक्षा प्रकाश हलका और धुँधलासा निकलता है और ज्योति रूपी लाट भी धुँधला पर्दा होने के कारण आँखें मारती

कम दिखाई देती हैं। इस तरह से, हे भगवन्! उस सूर्यों के सूर्य के तेज को बाहर प्रकट करने के लिये सिवाय अन्तः-करण को शुद्ध करनेके और कोई साधन वा उपाय नहीं है। अन्तःकरण जब शुद्ध होजायगा तो फिर चाहे। आत्म-ज्योति प्रकाश को बाहर प्रकट करने का प्रयत्न करें अथवा न करें, ज्योति बिना आपके प्रयत्न के आपके भीतर से फूट फूट कर बाहर निकलेगी। इस स्वच्छ अन्तःकरणमें से प्रकाश निकल कर अन्य अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरणोंको भी जो चिमनी के ऊपर के ग्लोब के समान है प्रकाशमान कर देगा। इस लिये आपका काम केवल अपने अन्तःकरण को ही अति पतली चिमनी के समान साफ़ और स्वच्छ बना देनाहै। जब अन्तः करण खूब निर्मल हो जायगा, तो उससे प्रकाश निकल कर अन्य अज्ञानी पुरुषोंके मनों को भी प्रकाशित कर देगा। इसी लिये हे भगवन्! पहले अपने अन्तःकरण को पतली और निर्मल-स्वच्छ चिमनी के तद्वत् बनाइए। इसप्रकार आपका अपना हृदय शुद्ध करना ही दूसरों का उपकार करना है। जिस समय अन्तःकरण बिल्लौर के समान स्वच्छ हो जायगा तो ज्ञानरूपी प्रकाश बिना आपके प्रयत्न और खोज के भीतर से प्रज्वलित होता हुआ औरों के हृदयोंको प्रकाशित करेगा, तब विकासवाद के नियम के अनुकूल भी आपका दर्जा समस्त जातियों से उत्तम होगा। क्योंकि जब वह ज्योति मनुष्य के अन्तःकरण से निकलती हुई अपना पूरा पूरा तेज बाहर दिखला देती है, तो उस समय विकासवाद के तत्त्व-वेत्ता भी उस मनुष्य को समस्त अन्य मनुष्यों पर विशेषता देते हैं, अर्थात् उसका दर्जा सारे संसार की सृष्टि से बढ़कर मानते हैं; मगर हिन्दुओं के यहाँ तो वह अव-तार ही समझा जाता है। अतः यदि मनों में संसार के

उद्धार करने का आवेश उठता है, तो ऐ सहानुभूति करने वालो ! पहले अपने आपका सुधार करो । और इस प्रकार से आपका अपने हृदय को शुद्ध करना और अपने आत्मा में निष्ठा करना ही अपने आप का सुधार करना होगा । जब इस रीति से अपना सुधार हो जायगा, तो यह अवश्य समझ लेना कि दूसरों का भी अपने आप सुधार हो जायगा; वरन् सबको निश्चय करना चाहिये कि इस नियम के विरुद्ध सुधार कभी भी संसार में हुआ नहीं । इस विषय में आपको अपना अनुभव गवाही देगा ।

अन्तःकरण को शुद्ध करने का साधनः—पहले वर्णन कर आए हैं, कि सुधार के इच्छुक या सुधारक महाशय के लिये शुद्ध अन्तःकरण रहना अत्यन्तावश्यक है । अतः अन्तःकरण के स्वच्छ रखने का उपाय भी शास्त्र और तत्व-ज्ञान के अनुसार बता देना आवश्यक समझ कर स्पष्ट किया जाता है । इससे पहले कि अन्तःकरण के स्वच्छ करने की रीति वर्णन की जाय, पहले प्रत्येक का ध्यान प्रकृति की ओर खींचा जाता है कि उसने सांसारिक पदार्थों को निर्मिल और स्वच्छ या मलिन और स्थूल करने का कौन सा ढङ्ग वा नियम अंगीकार किया है । क्योंकि जो रीति प्रकृति ने सांसारिक पदार्थों को स्वच्छ और निर्मल करने के लिये अंगीकार की हुई है, वही ढङ्ग या नियम यदि मनुष्य स्वीकार करेंगे तो निश्चयतः आशा की जा सकती है कि अन्तःकरण बहुत शीघ्र स्वच्छ और निर्मल हो जायगा यद्यपि मलिन तो पहले से है ही । विज्ञान के मत से सूर्य का प्रकाश सप्त रङ्गों का समुदाय होता है और जो रङ्ग संसार में मौजूद हैं, वह केवल सूर्य के ही हैं ।

अब प्रत्येक व्यक्ति जो विज्ञानविद् नहीं है, यह सुन कर बड़ा चकित होगा और यों कहेगा कि जब हम नील-कमल कहते हैं तो उससे स्पष्ट पाया जाता है कि कमल का रङ्ग नीला है, फिर किस प्रकार कहा जा सकता है कि रङ्ग केवल सूर्य का ही है ? नीला रङ्ग कमल का न होने में विज्ञान यह प्रमाण देता है कि रात को अँधेरे में हम कमल की पँखड़ियाँ और आकार, गोलाई, और वज़न आदि वैसा ही पाते हैं जैसे कि दिन में प्रकाश के समय पाते थे, मगर नीला रङ्ग जो सबेरे प्रकाश में कमल का देखते थे अब अँधेरे में कमल के साथ बिलकुल दिखाई नहीं देता। यदि कमल की पत्तियां, आकार और गोलाई आदि की तरह नीला रङ्ग भी कमल का अपना होता, तो कमल के शेष सब अंगों के समान वह भी सदैव कमल के साथ ही बना रहता।

परन्तु अँधेरे में शेष सब अंग तो कमल के साथ बने रहते हैं और भान भी होते हैं, किन्तु केवल रङ्ग ही रङ्ग नहीं रहता और न दिखाईही देताहै। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि रङ्ग कमल का नहीं बरन् उस प्रकाश का है जिसमें था जिसके कारण नीला रंग दिखाई देता था और लगातार नज़र आता था। इसमें अब फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यद्यपि यह सिद्ध होगया कि रंग कमल का न था, किन्तु यह किस प्रकार कहा जासकता है कि जो रंग किसी वस्तु का प्रकाश में देखा जाय वह केवल प्रकाश का ही होता है ? इस विषय में सविस्तर उत्तर तो प्रत्येक महाशय को नेबुलरथियूरी (नीहारिका सिद्धान्त) के पढ़ने से मिल सकता है, किंतु यहाँ केवल संक्षेपतः वर्णन किया जा सकता है। इस विषय में विज्ञान यों कहता है कि जो रंग

नीला या पीला आदि वस्तुओं का दिखाई देता है, उसका कारण केवल यह है कि जो सात रंग (लाल, नारंगी, नीला, आसमानी, पीला, हरा, और बनफ्शी) विज्ञान ने सूर्य के प्रकाश के वर्णन किये हैं, उनमें से छे रंग तो वस्तुयें शोषण करजाती हैं, और शेष एक रंग सूर्य की ओर वापिस लौटा देती हैं। जो रंग वस्तुएँ नहीं शोषण करतीं बल्कि सूर्य ओर ही वापिस लौटाती रहतीहैं, वही रंग दिखाई देताहै। यद्यपि दृष्टि में तो ऐसा ही आता है कि रंग वस्तु का है, किंतु वास्तवमें वह रंग केवल उसी सूर्य का ही होता है कि जिस स्रोतसे पहिले निकलकर वह वस्तुओं में शोषित होने के लिये वस्तुओं की ओर आया था, और शोषित न किये जाने के कारण फिर अपने स्रोत सूर्य की ओर ही वह गमन करता है। इस तरह से प्रत्येक रंग जो वस्तुओं का दिखाई देता है, वास्तव में सूर्य का ही होता है।

अब यहाँ एक और प्रश्न उत्पन्न होताहै कि प्रकाशके सप्त रंगोंमें काला और सफेद गिने नहीं गए, इसलिये हम किस प्रकार से कहसकते हैं कि यह दो रंग सूर्य के प्रकाश के ही हैं?और यदि सूर्य के प्रकाश के नहीं हैं तो ये दोनों रंग कहाँ से उत्पन्न हुये ? इसके उत्तर में विज्ञान का यह कहना है कि यदि आप इन रंगों का भी स्रोत मालूम किया चाहें तो पहले इन दोनों रंगों के प्रकट होने का कारण आप को जानना चाहिए। जब उनके प्रकट होने का कारण मालूम होजायगा तो फिर इनके स्रोत का हाल भी अपने आप मालूम हो जायगा। वस्तुओं का काला रंग उस समय होता है जब वस्तुएँ प्रकाश के सातों रंगों को शोषण करलेतीहैं;और सफेद रंग उस समय होता है जब वस्तुएँ प्रकाश के सातों रंगों में से एक को भी शोषित नहीं करतीं, वरन् सातों के सातों रंगों

को प्रकाश के स्वामी सूर्य की ओर वापस लौटा देती हैं, या दूसरे शब्दों में यों कहो कि वापस लौटाती रहती हैं। अतः ये दोनों रंग कहीं बाहर से किसी और वस्तु के द्वारा उत्पन्न नहीं हुए, वरन् वस्तुओं का ये दोनों रंग प्रकट करना केवल सूर्य के प्रकाश के सातों रंगों को अपने में शोषित करने या अपने से बाहर निकालकर सूर्य की ओर वापस लौटाने के कारण से है। इस लिये इन दोनों रंगों के प्रकट होने का कारण भी सूर्य का प्रकाश ही हुआ। किंतु यहाँ पर कर्म और कर्त्ता, या सूर्य और प्रकाश, में कुछ अंतर ही नहीं है, क्योंकि अपरिमित प्रकाश के स्रोत को विज्ञानविद् सूर्य मानते हैं, अतः इन दोनों रंगों का कर्ता अर्थात् इन दोनों का उत्पन्न करने वाला सूर्य ही हुआ। अतएव ये दोनों रंग सूर्य के हुए। अस्तु, यहाँपर और लंबे तर्क की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इतने लंबे प्रमाण से केवल तात्पर्य यह था कि संसार की समस्त वस्तुओं के काले और श्वेत होजाने का कारण स्पष्ट किया जाय और यह सिद्धान्त आप की समझमें आजाय कि संसार की समस्त वस्तुएँ केवल त्याग से अर्थात् सूर्य के प्रकाश के रंगों को अपने में प्रविष्ट न करने से, या उनके त्याग करने से, ही श्वेत होती हैं। अतः जिस प्रकार त्याग से अर्थात् प्रकाश के रंगों को अपने स्वामी की ओर वापस लौटा देने से समस्त वस्तुएँ श्वेत रंग की होजाती हैं, वैसे ही प्राणियों के अंतःकरण भी यदि यह शैली ग्रहण करें, अर्थात् भाँति २ के सांसारिक पदार्थों को अपने में शोषित न करें, वरन् उनके स्वामी परमात्मा की ओर वापस लौटा दें, तो वहभी श्वेत वस्तुओंकी भाँति श्वेत स्वच्छ और शुद्ध होसकते हैं, और जब मन उस पतली और स्वच्छ चिमनी के समान, जिसका उल्लेख पहले

होचुका है स्वच्छ और निर्मल होजायंगे, तो उनमें से आत्मा का प्रकाश फूट २ कर बाहर स्वतः निकलेगा, वरन् स्वयं आत्मा रूपी ज्योति स्वच्छ पर्दे में से आँखें मारती हुई दिखाई देगी। विरुद्ध इसके जब समस्त सांसारिक पदार्थों का प्रवेश अंतःकरण में होजायगा, अर्थात् जब मन समस्त भाँति २ के पदार्थों की कामना करके उनको अपने में शोषित करेगा, तो वह मन काली वस्तुओं की भाँति मलीन और काला होजायगा। इसलिये यदि आप स्वच्छ हृदय होना चाहते हैं तो प्यारो! स्वच्छ वस्तुओं की तरह आप सब पदार्थों का त्याग स्वीकार करिये। संसार में समस्त काली वस्तुएँ आपको यही उपदेश कर रही हैं कि यदि सांसारिक पदार्थों को इस तुच्छ अहंकार के वश में आकर अंतःकरण में शोषित करते जाओगे, तो उनकी भाँति तुम्हारा अंतःकरण, या तुम स्वयं, काले हो जाओगे, और इस तुच्छ स्वार्थपरता के फंदे में फंसना ही आत्म-हनन करना है। इस लिये भगवन्! स्वच्छ या शुद्ध अंतःकरण वाला बनने के लिये यह आवश्यक है कि आप श्वेत वस्तुओं के समान मनको समस्त सांसारिक पदार्थों का पीछा करने से हटा दें और मन में उनका लेश मात्र भी प्रविष्ट न होने दें। जब इस प्रकार से आप आचरण करेंगे, तो फिर आपके रोम रोम से यह आवाज़ प्रत्येक को सुनाई देगी कि त्याग ही अन्तःकरण की शुद्धि का एक मात्र साधन है।

किंतु स्मरण रहे कि उक्त अमृत उस समय ही प्राप्त होगा जब आप मनको पदार्थों से विरक्त करेंगे, अर्थात् मनको त्याग सिखाएँगे, क्योंकि इस अमृत को पाने के लिये श्रुति भगवति यह सिखलाती है।

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।

(सामवेद केनोपनिषद्)

अर्थात् धैर्यवान् पुरुष इस जगत् से मुह मोड़कर अमृत को प्राप्त होते हैं । वैसे भगवन् ! यदि तुम अमृत को चाहते हो तो मोड़ो मुहँ जगत् के पदार्थों से, वापस लौटाओ मनको अपने मालिक सूर्य की ओर, देखो, प्रत्येक पदार्थ में अपने सूर्य रूपी आत्मदेव को ही जिससे पदार्थ-भाव मनसे गर्दभ शृंगवत् उड़जाय, जैसे नामदेव के मन से उड़गया, था कि जो कुत्ते के रोटी लेजाने पर अपने हाथ में साग लेकर यह कहते हुए "रूखी न खाइयो मेरे स्वामी जी अपना बाँटा ले जाइयो" उसके पीछे हो लिये थे । अर्थात् लोगों की दृष्टि में तो कुत्ता रोटी ले जा रहा था मगर नामदेवजी के विचार में तो उनका स्वामी परमात्मा ही उनके हाथ से छीनकर लेजा रहा था ।

इसी प्रकार प्यारो ! मनको यदि पदार्थों से वापस लौटा कर अपने सूर्य रूपी आत्मदेव में लगाओगे, तो पदार्थ देखने के स्थान पर आपको वहाँ भी अपना आत्मदेव ही दिखाई देगा, वरन् पदार्थ-भाव बिलकुल ही उड़जायगा । जगत् के चित्र बिचित्र पदार्थों को मनमें न शोषित (जज़ब) करने का तात्पर्य यही है कि उनसे मनका मुहँ ऐसा मुड़-जाय कि तनिक पदार्थ भाव मन में न रहे, वरन् उसकी द्वैत-दृष्टि भी उड़ जाय और परमात्मा ही परमात्मा दिखाई दे । किंतु ऐ सुधार के इच्छुको ! ऐ संसार पर सहानुभूति प्रकट करने वालो ! यह स्मरण रहे कि पदार्थ भाव मनसे कभी नहीं मिटेगा जबतक कि मनको आत्मा में लीन न करोगे । क्योंकि मन का केवल पदार्थों की ओर जाने से रोकना ही

पदार्थ भाव को दूर करने के लिये काफी नहीं होगा, वरन् मनका पदार्थों से हटकर अपने आत्मा में निष्ठा करना पदार्थ भाव को दूर करेगा । ऐसे ही भगवन्! यदि तुम पदार्थों का विचार अंतःकरण से उड़ाना चाहते हो तो उठो! उठो! मनको आत्मा में स्थित करो, क्योंकि तुम्हारे मन का आत्मा में स्थित होना ही हलका होकर ऊपर उड़जाना है। ब्रह्मनिष्ठ होने के बाद आपको सुधार करने की चिंता भी न करनी होगी वरन् बिना प्रयत्न किये संसार का भला स्वाभाविक होता जायगा, चाहे उस समय तुम निर्जन वन में बैठो, चाहे संसार में प्रकट रूप से उपदेश दो, स्वाभाविक ही संसार का कल्याण होगा। इस लिये प्यारो! इसके पहिले कि कोई और साधन सुधार का ग्रहण करो, यही रीति जो अपने आप को सुधार करने की पुकार २ कर बतलाई गई है और जिससे संसार का श्रेष्ठ उपकार होसकता है, उसको तुम हृदयंगम करो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!
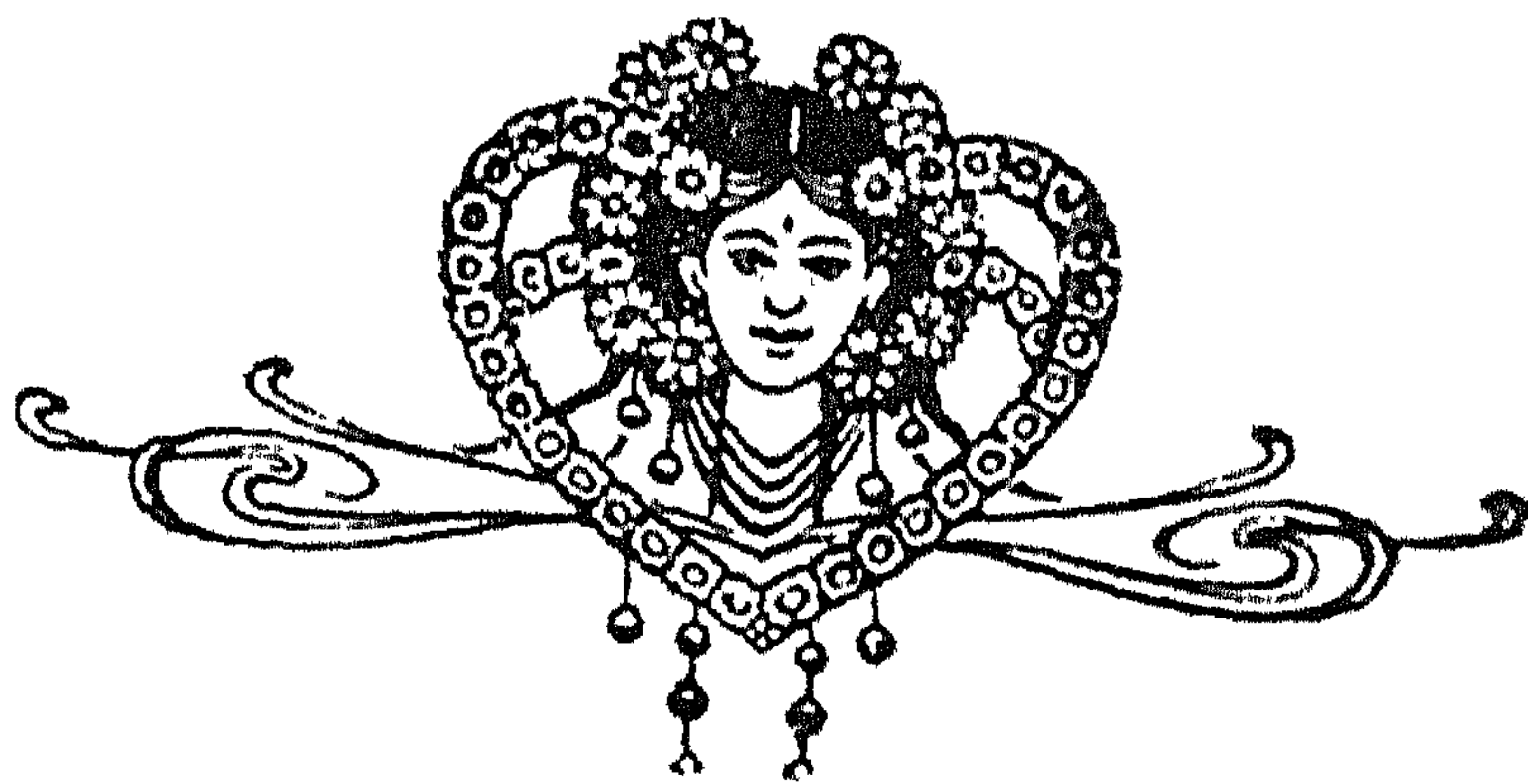
उन्नति का मार्ग।

(२४ सितम्बर सन् १९०५ को दिया हुआ व्याख्यान)

व्याख्यान आरंभ करने से पहले राम आपको यह बताना चाहता है कि आत्म-पूजा (सेल्फ़-रेस्पैक्ट Self respect) और आत्म सम्मान इन शब्दों के क्या अर्थ हैं। लोगों ने इनको ग़लत समझ रक्खा है। यदि आप स्वयं (सेल्फ़ Self) के अर्थ परिमित समझते हैं और उसको केवल अपना शरीर मानते हैं, तो आत्म-पूजा (सेल्फ़ रेस्पैक्ट) के अर्थ अहंकार और अहंमन्यता के होंगे, जो पाप है। यदि सेल्फ़ का तात्पर्य ईश्वर का स्वरूप समझा जाय, तो सेल्फ़-रेस्पेक्ट से बढ़कर कोई पुण्य नहीं होसकता है। राम आप लोगों से चाहता है कि व्याख्यान आरंभ होने से पहले आप अपने विचारों को एकत्र कीजिए, अर्थात् एकाग्रता से काम लीजिए, और खूब ध्यान से सुनिए। आप भगवत्-स्वरूप हैं, और जब कि आप अनंत स्वरूप हैं, तो आप में परिच्छिन्न सांसारिक विचारों का होना भी ग़लत है।

एक राजा का पुत्र किसी बुरे काम में प्रवृत है। अपने नौकरों में बैठता है, अथवा किसी को गंदी गालियाँ

देता है, और उससे यह कहा जाता है कि तुम क्या कर रहे हो, तुमको यह शोभा नहीं देता, तुम राजा के पुत्र होकर इन नीच लोगों में बैठते हो और ऐसी गालियाँ अपनी जिह्वा पर लाते हो; वह तत्काल अपनी असली अवस्था को जान करके अपने कर्म पर लज्जित होता है । इसी प्रकार आप अपने स्वरूप का ध्यान कीजिए । आपका स्वरूप तो परमेश्वर है, वह स्वरूप तो त्रिलोकी को आनंद देनेवाला है, सूर्य को सोना और चंद्रमा को चाँदी देनेवाला है, अतः आप ठीक उस बालक की तरह अपने कर्मों पर लज्जित होओ, और सांसारिक वस्तुओं में अपने को इतना आसक्त न होने दो । अपने स्वरूप को जानो और समझो । देखो, तुम्हारा गायत्री मंत्र क्या सिखाता है । राम उस मंत्र को नहीं पढ़ता, केवल उसका आशय (उद्देश) बतलाएगा। वह यह है, मेरी बुद्धि प्रकाशित हो, क्योंकि वह जो सूर्य और चंद्र और तारों को प्रकाश देनेवाला है, वह मेरा आत्मा है । जब यह बात है तो राम कहता है कि वे लोग जो अभेदवादी हैं, वे अपनी अभेद-दृष्टि को सन्मुख रखकर, और वे जो भेदवादी हैं वे अपनी भेद-दृष्टि को धारण करके उस ज्योतिस्वरूप का ध्यान करें । वह ध्यान क्या है ? वह यह है कि वह जो बाह्यप्रकाश का स्रोत है और जो भीतरी ज्ञान-ज्योति का स्रोत है, वह मेरे हृदय में है, मेरे हृदय में वह दीपक जलरहा है, मेरे हृदय में वह ज्योति प्रकाशमान है । अब राम आज के विषय पर आता है । वह विषय यह है ।

उन्नति का मार्ग ।

यह विषय अत्यंत विस्तृत है । इसलिये इसमें से केवल एकाध आवश्यक भागों को राम लेगा । आम तौर से लोग

यह प्रश्न करते हैं कि ये उन्नति २ पुकारने वाले लोग कहाँ से आगये ? अरे भाई! अपने घर रहने और आमोद-प्रमोद से जीवन व्यतीत करने में सुख है या उन्नति-उन्नति की शिर पीड़ा मोल लेने में ? लोगों की जिह्वा पर यही है कि हमको यहीं रहने दो, हम आगे नहीं जाना चाहते और इसी पर वे आचरण भी करते हैं, और उनका कथन है।

बक़दरे-हरसकूँ राहत बुवद बनिगर तफ़ावत रा ।
दवीदन रफ़्तन ईस्तादन निशस्तन खुफ़्तनो मुर्दन ॥

अर्थ–इस कहावत के प्रमाण में कि प्रत्येक स्थिति (ठहराव) में कितना आनंद होता है तुझे दौड़ने, चलने, खड़े होने, बैठने, सोने और मरने की स्थिति के अन्तर पर विचार करना उचित है।

किंतु यह आनंद क्या वस्तु है ? यह तो क्षणभंगुर है। यह कोई अवस्था स्थिर नहीं रहसकती। कभी तो खुफ्तन (स्वप्न)की दशा खत्महोगी,फिर उसके बाद राहत(आराम) का अन्त है। सबसे अधिक आनंद तो वहाँ होगा कि जब ऐसी मृत्यु आवे कि फिर मरने की नौबत न आवे। ऐसे आलस्योपासक महात्माओं को राम एक प्रकृति का नियम बतलाता है। विकासवाद का इतिहास (History of Evolution) हम को यह उपदेश देता है कि "move or die" आगे बढ़ो, या मरो। जो कोई आगे बढ़ने से इनकार करेगा, वह कुचला जायगा। इसके सिवाय और कोई वश वा इलाज नहीं है। संसार में जितने प्राणी हैं, सब की दशाओं पर ध्यान करने से यही नियम मालूम होताहै कि आगे बढ़ो। जड़, चेतन, वनस्पति सभी स्थान पर इसी नियम का सिक्का (आतंक वा राज्य) है।

असभ्य जातिओं और पशुओं की दशाओं को पढ़ने से भी यही मालूम होता है कि उनके खून के प्रत्येक बूँद पर लिख दिया गया है कि आगे बढ़ो । कहा गया है और सच कहा गया है कि उन्नति (Evolution) जंगोजद्ल पुरुषार्थ से, परिश्रम से, और कष्ट उठाने से होतीहै । जो व्यक्ति परिश्रम और प्रयत्न न करेगा, वह नष्ट होगा और कुचला जायगा । जिस तरह एक गाड़ी में घोड़ा जोता जाता है, उसका काम है कि गाड़ी को खींचकर आगे लेजाय । यदि वह न चले और रुक जाय तो कोचवान उसपर चाबुक पर चाबुक मारता है । यही दशा व्यक्तियों और जातियों की है ।

जो व्यक्ति या जाति आगे चलने से इनकार करती है, उसको दैव या प्रकृति (providence) के नियम चाबुक मारतेहैं। यह नियम अटल है । इसके बर्तनेमें कभी रिआयत नहीं हो सकती । परमेश्वर को किसी जाति या संप्रदाय का पक्ष नहीं है । जो कोई उसके नियम के अनुसार चलता है, वह उसका प्यारा है, वह बचता है; किंतु जो उसके नियम को तोड़ता है, वह उसका शत्रु है, वह मरता है और नष्ट होता है । ज़रा देखो तो, यदि तुम सांसारिक गवर्नमेंट के नियमों के विरुद्ध चलो, तो तत्काल दंड पा जाते हो, किसी तरह बच नहीं सकते; जब सांसारिक गवर्नमेंट के नियमों के विरुद्ध चलने का यह हाल है, तो भला परमेश्वर के नियमों के विरुद्ध चलना और बचने की आशा करना बिलकुल मूर्खता है या नहीं । धर्मशास्त्र के अनुसार भी आगे बढ़ने से इनकार करने का ही नाम पाप है । इसको तमोगुण कहते हैं । भौतिक विज्ञान-शास्त्र हम को सिखाता है कि गति के नियमों में से एक नियम का नाम है Law of Inertia, जड़ता का नियम । अपनी दशा बदलने

से इनकार करने को जड़ता कहते हैं। प्रत्येक वस्तु में यह भाव या स्वभाव है कि वह अपनी दशा बदलना नहीं चाहती। यही सुस्ती, शिथिलता या जड़ता है। हमारे शास्त्रों में श्रम या शक्ति से शून्य होने को तमोगुण कहते हैं। यह नियम विस्तार के साथ इन शब्दों में वर्णन किया जासकता है कि यदि एक वस्तु को स्थिर अवस्था में रक्खा जाय, तो वह सदैव उसी अवस्था में रहेगी और जबतक कोई चेतन वस्तु उसपर कार्य न करे, उस समय तक वह अपनी दशा नहीं बदलेगी। इसी प्रकार यदि एक वस्तु को गतिकी दशा में रक्खा जाय तो वह बराबर उसी दशा में रहेगी, और जबतक कोई चेतन वस्तु उसपर कार्य न करे, उस समय तक वह उस दशा को परिवर्तित नहीं करेगी। इसको स्थिरता का नियम भी कहते हैं। अतः आगे न बढ़ना, या यों कहिए कि अपनी दशा को परिवर्तित न करना, जड़ता है, तमोगुण है, अर्थात् पाप है। एक दूसरा नियम (Law of Acceleration) वर्धमानता या गत्यन्तर का नियम है। इससे रजोगुण प्रकट होता है। अर्थात् यह वह दशा है कि जब जड़ता के ऊपर अपना वश वा शासन प्राप्त होजाता है। और आगे बढ़ने या दशा परिवर्तित करने का विचार और उसकी शक्ति आजाती है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मनुष्य तो अनन्त स्वरूप है। उसमें यह पाप कहाँ से आया। इसका उत्तर कुछ लोग यों देते हैं कि प्रथम पाप हज़रत आदम ने किया था और उसमें से हमको यह बपौती मिली। राम इस प्रश्न पर इस ढंग से बहस नहीं करेगा। राम आपको बतलायगा कि ज़रा हिन्दू-शास्त्र (Hindu Philosophy) की ओर ध्यान करो और देखो कि उसने क्या सिखाया

है । यहाँपर पुनर्जन्म का प्रश्न आजाता है, जो सच है और जो स्वतः एक स्वतंत्र व्याख्यान का विषय है । राम इस समय उसपर कुछ नहीं बोलेगा । हमको हिन्दू-शास्त्र यह सिखाता है कि मनुष्य चौरासी लाख योनियों में से फिरकर आया है । विज्ञान का भी यह एक निर्णीत सिद्धान्त है कि मनुष्य सबके पश्चात् उत्पन्न हुआहै । इतिहास-चिह्न विद्या (Archeology) और भूगर्भ विद्या (Geology) आदि से इसका पूरा प्रमाण मिलता है । गर्भ शास्त्र (Embryology) भी इसको सिद्ध करता है । यह नवीन विद्या है जिसका हेकल (Heckel) ने आविष्कार किया है । इस विद्या के प्रत्यक्ष अनुभवों से भली भाँति सिद्ध होता है कि मनुष्य सब से बाद को आया । राम स्वयं एक अद्भुतालय (अजायब घर) में गया । उसमें देखा कि गर्भ के भीतर के एक दिन, दो दिन, तीन दिन, पाँच दिन, इसी क्रम से महीने, दो महीने तक के भ्रूण (बच्चे) शीशियों के भीतर स्पिरिट में रक्खे हुए थे । उनसे ज्ञात होता था कि माता के पेट में चेतन की क्या अवस्था होती है । वह भिन्न २ रूप धारण करता है—अर्थात् मछली, मेंढक, कुत्ता, बन्दर आदि दशाओं में से होकर उसके बाद मनुष्य की अवस्था धारण करता है । अतः स्पष्ट सिद्ध है कि मनुष्य संसार में सब से बाद को आया । और क्योंकि वह पाशविक अवस्थाओं को छोड़कर आया है, इसलिये उसमें अभी (Animal passions) तमोगुण शेष है, इसीलिये उसमें पाप पाये जाते हैं । पाप या पुण्य, ये सापेक्षक शब्द (relative terms) हैं । जो वस्तु एक दशा में पाप है, वह दूसरी दशा में पुण्य है । बच्चे के लिये जो पाप नहीं है, वह बूढ़े के लिये पुण्य है । चौथी श्रेणी का एक बालक

अपनी कक्षा की पुस्तकों को पढ़ता है, वह इसके लिये पुण्य है, किन्तु यदि एम्० ए० क्लास का एक विद्यार्थी अपनी पुस्तकें छोड़कर चौथी श्रेणी की पुस्तकें पढ़े, तो उसके लिये पाप है। एफ० ए० क्लास से उन्नति पाकर बी० ए० में पढ़ना पुण्य है, किन्तु बी० ए० में फेल होकर पुनः२ बी० ए० में पढ़ना पापहै। इससे स्पष्ट होताहै कि पाप की जड़-मूल यह है कि एक अवस्था से उन्नति न करना। इसी प्रकार जो बातें पशुओं में मौजूद थीं और उनमें पाप न थीं, परन्तु मनुष्य की अवस्था में आने से पाप में परिवर्तित होगईं। पशुओं की दशा छोड़ने के पश्चात् मनुष्य मनुष्य की दशा में आता है, किन्तु उसमें तमोगुण (Animal passion) शेष रहता है। यदि इस समय वह उस बुद्धि से जो उसको पशुओं से पहचान करने के लिये दीगई है, काम न ले और इस बात पर विचार न करे कि क्या उसके लिये पुण्य है और क्या उसके लिये पाप है, तो वह जड़ता के नियम (Law of Inertia) के अनुसार जड़ है, क्योंकि वह अपनी अवस्था परिवर्तित करना नहीं चाहता है। वह उन बातों को, जो उसमें पशुता की अभी शेष हैं, ज्यों की त्यों रहने देना चाहता है, और बुद्धि के प्रकाश से लाभान्वित होकर आगे नहीं बढ़ना चाहता है।

अतः जो व्यक्ति आगे बढ़ने के लिये तैयार नहीं है, वह पाप करता है। यही पाप का तत्त्व है, और यही है सम्बन्ध जिस तरह से पाप मनुष्य में आता है।

तुम्हारी बाइसिकिल का पहिया घूम रहा है, और तुम्हारा कुत्ता उसके आगे-आगे दौड़ता चला जा रहा है। यदि वह बराबर चला जायगा तो उसका कोई सदमा

(चोट) तुम्हारी बाइसिकिल के पहिए से नहीं पहुँचेग किन्तु यदि वह रुक जाय या तुम्हारी बाइसिकिल क चाल की अपेक्षा अपनी चाल कम करदे, तो वह अवश् पहिए के नीचे दबजायगा । हाँ, एक उपाय उसके बचाः का यह भी है कि तुम स्वयं अपनी बाइसिकिल को रोक दो । इसी तरह पर काल का पहिया चक्कर लगा रहा है उसके साथ-साथ दौड़ो तो कुशल है, नहीं तो उसके नीचे दबकर मरना आवश्यक है । यहाँ एक कठिनता और भी है कि परमेश्वर अपने पहिए को नहीं रोकेगा । उसके नियम अटल हैं, वे सदैव प्रचलित हैं । वहाँ किसी का पक्षपात नहीं है ।

अतः उन्नति करो, नहीं तो कुचले जाओगे, पिस जाओगे और नष्ट होजाओगे । वही जातियाँ नष्ट होती हैं जो आगे नहीं चलती हैं । जो सदैव पीछे ही को पग हटाती हैं, जो नवता (originality) और नूतन मार्ग प्रवर्तन (Innovation) को पाप समझती हैं । राम इन शब्दों की व्याख्या नहीं करेगा । इनका तात्पर्य तो तुम अपने आप समझ गये होगे । इससे यह परिणाम निकला कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न और पुरुषार्थ के हैं ।

इस पर यह प्रश्न होता है कि यह तो सत्य है कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न के हैं; किन्तु प्रयत्न से क्या हो सकता है, प्रत्येक वस्तु प्रारब्ध के अधीन है, अर्थात् भाग्य पर निर्भर है । यह विषय स्वयं ऐसा है कि इस पर एक स्वतंत्र व्याख्यान दिया जाय, किंतु संक्षेपतः उत्तर यह है:—

तत्त्व तो यह है कि जो लोग कहते हैं कि प्रत्येक काम भाग्य से होता है, वह भी सच कहते हैं । वह इस सिद्धान्त

को लागू करने में भूल करते हैं। दृष्टान्त रूप से, जैसी ऋतु होगी, वैसा स्वभाव हो जायगा। जाड़े की ऋतु में गरम कपड़े पहनोगे, घर के भीतर रहोगे, आग जलाओगे, आदि-आदि। गरमी की ऋतु में मैदान में रहोगे, ठण्ढे कपड़े पहनोगे, ठण्ढा पानी पियोगे, आदि-आदि।

अब ऋतु का बदलना दैव-इच्छा वा भाग्य या प्रारब्ध है, अर्थात् वह एक नियत वस्तु है। और यह प्रारब्ध सारे देश पर प्रभुत्व स्थापन किये है, किंतु ऋतु के अनुसार कपड़े पहनना और उसके अनुसार स्वभावों को बनाना अपने ही पुरुषार्थ पर निर्भर है। परिवर्तित ऋतु की दशा इसमें कुछ नहीं कर सकती। चोर चोरी करता है, विद्यार्थी पढ़ता है, जज मुक़दमे फैसल करता है, ये सब लोग अपने अपने काम सूर्य की सहायता से करते हैं। इन लोगों में काम करने की शक्ति अन्न खाने से आती है, अन्न सूर्य के प्रकाश और शक्ति को खा जाता है। इस प्रकार वही सूर्य का तेज इन लोगों में आकर काम करता है। दीपक के प्रकाश में भी वह ज्योति है, जो उसने सूर्य से उधार ली है। अतः स्पष्ट है कि वस्तुतः इन सब के कामों का करने वाला सूर्य है। किंतु क्या बात है कि सूर्य को कोई चोरी का लाँछन नहीं लगाता है। उसको क्यों नहीं अपराधी निश्चित किया जाता। कारण यह है कि सूर्य सामान्य जुज्व वा अवयव (Common factor) है, क्योंकि उसने वकील, मुद्दई और जज को भी उसी तरह पर शक्ति दी है जिस तरह पर कि चोर को। व्यवहार में सामान्य जुज्व (Common factor) निकाल दिया जाता है। जिस तरह जुज्व तुलना में अ-ब=ज-ब के अर्थ अ=ज हैं, अर्थात् ब जो सामान्य अवयव (Common factor) था, खारिज

कर दिया गया, और इस समानता में कोई अन्तर भी नहीं आया। इसी तरह पर कल्पना करो कि एक मनुष्य दूसरे के धक्के से गिर पड़ा, तो वस्तुतः इसके गिरने का कारण गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of gravitation) है, किंतु वह उसनियमसे नहीं लड़ेगा। वह तो उस धक्का देने वालेको पकड़ेगा। अतः प्रत्येक मनुष्यमें कुछ भाग अस्थिर(Variable) है, और कुछ भाग स्थिर (Invariable है। स्थिर भाग तो प्रारब्ध है, और अस्थिर भाग पुरुषार्थ है। अब यह देखना है कि इन दोनों में कोई सम्बन्ध भी है या एक दूसरे से वे बिलकुल सम्बन्ध-रहित और निष्प्रयोजन हैं। राम इसको व्यावहारिक दृष्टि से आपके समक्ष उपस्थित कर रहा है। इनमें एक विशेष सम्बन्ध है। आपकी प्रारब्ध आपही की बनाई हुई है। यदि पुरुषार्थ कोई वस्तु ही नहीं है, तो धार्मिक पुस्तकों में विधि और निषेध क्यों सिखाया गया है? इसी के लिये कहा है—

दर्मियाने—कारे—दरिया तख्ताबंदम करदए,
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश।

अर्थ—नदी के भारी वेग में तो हाथ पाँव बाँध कर मुझे डाल दिया और फिर यह तू कहता है कि हुश्यार हो। पल्ला मत भीगने दो, अर्थात् लिपायमान मत हो।

धार्मिक पुस्तकों के देखने से, चाहे वह मुसलमान, हिंदू या ईसाई धर्म की हों, यह स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने तुम्हारे भीतर पुरुषार्थ का एक अंश पाया है।

अब राम दोनों का सम्बन्ध दिखाता है। रेलगाड़ी पटरी को छोड़ कर इधर या उधर नहीं जा सकती है। पटरी उसकी भाग्य है, किंतु चलने में वह स्वतन्त्र है, यह

उसका पुरुषार्थ है । किंतु रेल जारी होने से पहले पटरी भी रेल वालों के अधिकार में थी । इसी प्रकार एक व्यक्ति एक गरीब के यहाँ उत्पन्न होता है, जहाँ उसके माता-पिता खाने तक को मुहताज हैं । वे उसकी सामान्य परिपालना भी नहीं कर सकते । एक दूसरा व्यक्ति किसी अमीर के यहाँ उत्पन्न होता है, और दूसरा किसी गंड मूर्ख के यहाँ जन्म लेता है । यह तो रेल की पटरी की तरह उसकी प्रारब्ध है, किंतु इसमें पुरुषार्थ का भी भाग है जिसके कारण वह अपनी दशा को सँभाल सकता है । विदित रहे कि यह भाग्य की पटरी उन्हीं के पुरुषार्थ के अनुसार बनाई जाती है । देखा, मकड़ी अपने मुँह से तार निकालती है और उसके बाद उसी पर चलती है । अब वह किसी दूसरी ओर नहीं जा सकती, यदि वह किसी दूसरी ओर जाना चाहे, तो फिर वह अपने मुँह से तार निकाले और उसको उसी ओर ले जावे, तब उस ओर भी जा सकती है । तार निकलने से पहले वह (तार निकालने का काम) उसका पुरुषार्थ था, किंतु निकलने के बाद वह उसकी प्रारब्ध बन गया । अब उसको उस पर चलने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है ।

यह विदित है कि तार निकालने से पहले उसके अधिकार में था कि किसी ओर इसको लेजावे, अर्थात् अपने प्रारब्ध का बनाना उसके अधिकार में था । किंतु जब एक बेर वह बनगई फिर उसके बदलने के लिये पुनः पुनः वही कलकी कार्रवाई करनी पड़ती है जो एक बेर करचुकी है । रेशम के कीड़े की दशा से भी यही सिद्ध होता है । एक और उदाहरण लीजिए । कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य दस्तावेज़ लिखना चाहता है, अर्थात् कुछ पुरुषार्थ

करना चाहता है। अब इस पुरुषार्थ के समय उसको अधिकार है कि करे या न करे (अर्थात् दस्तावेज़ लिखे या न लिखे), अथवा जो शर्तें चाहे लिखे। किंतु जब एक बेर लिख चुका, तो फिर पाबंद होगया। वह उसकी प्रारब्ध बन गई। अब सिवाय शर्तों की पाबंदी के और कोई इलाज नहीं है। यथा —

यारे-मन ख़ुद कर्दा रा इलाजे नेस्त ;
कर्दनी ख़्वेश, आमदनी पेश।

अर्थ- मेरे प्यारे! अपने किये हुये पुरुषार्थ का और कोई इलाज नहीं, सिवाय इसके कि जो कुछ किया है वह भोगने को सामने आवे।

हैं ख़ते-तक़दीर से यह ख़त-पेशानियाँ ;
पेश आती हैं यही जो हैं पेशआनियाँ।

योगवाशिष्ठ में लिखा है कि पुरुषार्थ ही से कार्य की सिद्धि होती है। सारे बुद्धिमान् लोगों के काम पुरुषार्थ ही से होते हैं। प्रारब्ध का शब्द तो केवल उन लोगों के आँसू पोंछने के वास्ते बनाया गया था जो कोमल चित्त हैं और जिनपर कोई विपत्ति आपड़ी है, नहीं तो नित्यप्रति जीवन के कुल काम पुरुषार्थ ही से होसकते हैं। मनुष्य भोजन भी पुरुषार्थ ही से खाता है, पानी भी पुरुषार्थ ही से पीता है, नौकरी भी पुरुषार्थ ही से करता है, कोई सार्वजनिक काम भी पुरुषार्थ ही से करता है।

इस भूमिका के पश्चात् ज़रूरी उन्नति को सफलता के साथ करने के उपाय को राम बताता है। उद्यमों में कृतकार्यता प्राप्त करने के लिये इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) सांसारिक काम धंधों के निमित्त सबसे पहली वस्तु प्रकाश है । कैसा ही निर्मल और स्वच्छ घर क्यों न हो, यदि अँधेरे में जाओगे तो कहीं कुर्सी की चोट लगेगी, कहीं दीवार से शिर टकराएगा, कहीं लैम्प से ठोकर लगेगी, और वह टूट जायगा, निदान, पग २ पर दुःख ही दुःख होगा । फिर बिना प्रकाश के कोई वस्तु उग नहीं सकती । एक पौधा अँधेरे में बोया जाय और दूसरा प्रकाश में, और दोनों का सींचना एकही प्रकार किया-जाय । परिणाम क्या होगा ? स्पष्ट है कि अँधेरे में बोया हुआ पौधा सूख जायगा और प्रकाश वाला खूब हरा भरा होता चला जायगा । फिर जब बिना प्रकाश के वृक्ष नहीं उन्नति कर सकते हैं, तो मनुष्य का उन्नति करना तो एक किनारे ही रहा । अब प्रकाश से प्रयोजन क्या है ? वही ध्यान जिसका उल्लेख राम भाषण के आरंभ में कर आया है । वही तेजों का तेज ज्योतिस्वरूप आत्मदेव । उसका न भूलना इसी का नाम प्रकाश है । अब इसपर कदाचित् कहोगे कि यह क्या बेहूदगी है । संसार में सहस्रों नास्तिक होते हैं, क्या उन्होंने कोई उन्नति नहीं की है । राम का उत्तर यह है कि ये सुप्रसिद्ध लोग, जिनको आप नास्तिक कहते हैं और जो बड़े बड़े काम करगये हैं, जैसे हरबर्ट-स्पेंसर, स्पाईनोजा, और हक्सले (Herbert spencer, Spinoza और Huxley) । मान भी लीजिए कि ये लोग नास्तिक थे; किंतु व्यावहारिक रीति पर अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से इनकी उन्नति का कारण उनकी ईश्वर प्रमुखता और उनकी ईश्वरोपासना है । इन लोगों के जीवनचरित्रों को पढ़िए । इससे ज्ञात होगा कि यद्यपि ये लोग हमारे माने हुए ईश्वर को नहीं मानते थे, किंतु वे ईश्वर के भाव

(Spirit) को अपने नस २ में रखते थे। एक राजा के यहाँ दो नौकर हैं। इनमें से एक तो राजा की खूब खुशामद करता है, किंतु काम कुछ नहीं करता है; दूसरा राजा की खुशामद (चाटूक्ति) से कुछ प्रयोजन नहीं रखता. केवल अपना धार्मिक कर्तव्य अत्यंत सुन्दरता के साथ पालन करता है। अब प्रश्न यह है कि राजा किससे प्रसन्न होगा? स्पष्ट विदित है कि वह काम करनेवाले से प्रसन्न होगा। काम प्यारा है; चाम नहीं प्यारा है। बस यही दशा उन नास्तिकों की है। उन्हों ने माला नहीं जपी, उन्होंने माथा नहीं रगड़ा, किंतु उन्हों ने अपने आचरण से ईश्वर की उपासना की, उनका प्रत्येक काम माला का एक दाना था, और उनकी जीवनी एक माला थी। राम आप से यह नहीं कहता कि आप नास्तिक होजाइए। आप दर्शन भी कीजिए और काम भी कीजिए; किंतु नास्तिकों की भाँति प्रत्येक व्यक्ति कर्म नहीं करसकता। कोरे ज्ञान योग से उन्नति नहीं करसकता, सहारे की आवश्यकता है। कोरे सगुण ईश्वर (Personal God) का मानना इस सहारे की आवश्यकता के कारण से है। अतः उन लोगों को जो बिना सहारे के नहीं चल सकते, यह चाहिए कि नित्यप्रति बिना नागा के आध्यात्मिक भोजन खायँ। इससे उनको बड़ी सहायता मिलेगी। वह आध्यात्मिक भोजन क्या है? ध्यान, भजन, उपासना। क्रामवील (Cromwell) और महाराजा रंजीतसिंह इत्यादि के विषय में लिखा है कि जब ये कोई युद्ध आरंभ करते थे, तो अपने तन मन और धन को परमात्मा को अर्पण करके प्रार्थना के साथ काम का आरंभ करते थे और कृतकार्य होते थे। ऐसे ही लोगों के लिये कहा है कि—

दौलतो गुलामे-मन शुदो इकबाल चाकरम।
अर्थः—दौलत मेरी गुलाम है और इक़बाल है चाकर।
अथवा—बाँधे हुए हाथों को ब उम्मेदे-इजाज़त;
हैं रहते खड़े सैकड़ों मजमूँ मेरे आगे।

किन्तु प्रार्थना में दो अंश हैं—एक माँगना; दूसरा अर्पण करना। माँगने का अंश स्वार्थपरता है; अर्पण, करना ही प्रार्थना का सच्चा अंश है, और यही ईश्वर-संग ईश्वर-संभाषण (Communion with God) है। इसका मतलब यह है कि जो कर्म किया जाता है, वह ईश्वर के लिये किया जाता है। समर्पण का अर्थ हृदय में प्रकाश का रखना है, और यही सच्ची प्रार्थना है। जो व्यक्ति अपने हृदय को ऋणात्मक (negative) दशा में रखता है अर्थात् जो सदैव इच्छाओं का दास बना रहता है, उसके कामों में बड़ा हरज होता है, और ऐसे लोग कभी सफल नहीं होते। सफल वही होते हैं जो सदैव नत-मस्तक और हँसमुख रहते हैं। शोकातुर लोगों की उन्नति नहीं हो सकती है। जैसी तुम्हारे भीतर की दशा होगी, वैसी ही तुम्हारी सफलतायें भी होंगी। वही प्रसिद्ध उक्ति (मिसल) है, 'घर से जाओ खा के, बाहर मिले पका के, घर से जाओ भूखे, बाहर मिलैं धक्के।'

यदि आप परमेश्वर की भक्ति धन या सन्तान की कामना से करते हैं, तो वह परमेश्वर की भक्ति नहीं है, वरन् वह तो अपनी स्वार्थपरता की भक्ति है। आप वास्तव में परमेश्वर की भक्ति नहीं करते, वरन् उनको अपना खानसामाँ बनाते हैं कि वह हर समय आपकी सेवा को उपस्थित रहे, और जब जिस वस्तु की आपको आवश्यकता हो, उसको वह तत्काल आपके सम्मुख लाता रहे।

अहा ! यह तो उलटी गंगा बहाना है । प्यारे ! परमेश्वर को अपनी विषय-कामनाओं के लिये मत नचाओ । तुमको चाहिए कि प्रत्येक काम को हिम्मत और शांति के साथ करो । यही सफलता का साधन है । अगर तुम्हारे पास कोई व्यक्ति भीख माँगने आए, तो तुम उससे आँख चुराते हो, इसी तरह जब तुम परमेश्वर के पास भिखारी बनकर जाओगे, तो वह भी तुमसे आँख चुराएगा । परमेश्वर से हृदय की शुद्धता और भक्ति के साथ मिलो । यदि तुम्हारे यहाँ कोई बड़ा आदमी आवे तो तुम उसको बड़े आदर से बिठा लेते हो, किंतु एक थका और दीन मनुष्य तुम्हारे पास आकर बैठना चाहे, तो तुम उससे घृणा करते हो । याद रक्खो, कि यह आत्मा कमज़ोर से नहीं मिलना चाहता है । दुर्बल की परमेश्वर के घर में दाल नहीं गलती है । यथा—

हर दीदा जलवागाहे-आँ माह पारा नेस्त ।

अर्थ—प्रत्येक चक्षु से उस (प्रिय स्वरूप परमात्मा) का प्रकाश समान रूप से ज्ञात नहीं होता है ।

तुम इसकी चिंता न करो कि तुम्हारी आवश्यकतायें कहाँ से पूरी होंगी । राम तुमको प्रकृति का वह नियम बतलाता है जिससे प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता का पदार्थ उसके पास अपने आप पहुँच जाता है । (Law of affinity) जिसको रसायन प्रीति-नियम कहते हैं, यह प्रकृति का नियम है जिसके अनुसार जलते हुए दीपक को ऑक्सीजन वायु मंडल से प्राप्त हो जाता है । अतः यदि आप अपने शरीर को प्रत्येक के लिये जला रहे हो, तो आपके पास आपका भोजन अपने आप खींचकर आ

जायगा। आपके पास वह वस्तुयें जिनकी आवश्यकता है, अपने आप आयेंगी। देखो, प्रकृति का विचित्र खेल क्या प्रबन्ध कर रक्खा है। जब दीपक जैसी निर्जीव वस्तु के लिये प्रकृति ने उसके भोजन का प्रबन्ध कर दिया है, तो क्या मनुष्य ही वंचित रहेगा?—नहीं, कदापि नहीं। किंतु शर्त यह है कि अपने में भी पिघलाहट चाहिए।

असर है जज़्बे-उल्फ़त में तो खिंचकर आ ही जायेंगे;
हमें परवा नहीं इसकी वह हम से तन के बैठे हैं।

आप नाना वस्तुओं को देखते हैं कि उनके रंग हैं, किंतु यह रंग वस्तु के निज के रंग नहीं हैं। पत्तेका रंग हरा दिखाई देता है, किंतु यह हरा रंग पत्तेका नहीं है। रंग सब सूर्य के हैं; वस्तुओं के नहीं हैं। यदि रंग वस्तुतः चीज़ों के होते और सूर्य के न होते, तो उनको अँधेरे में देखने से भी वे दिखाई देते। यदि तुम एक पत्ते को अँधेरे में देखो, तो तुम उसकी अन्य सब अंगो को अनुभव करोगे, किंतु रंग का अनुभव नहीं करोगे। कारण यह है कि यह रंग तो रंग वाले का है, हरे पत्तों में एक मसाला है—क्लोरोफिल (Chlorophyil), इसमें यह गुण है कि वह सूर्य की किरण के और सब रंग खा लेता है, किंतु हरे रंग को लौटा देता है। अर्थात् यह कि जो रंग इस पत्ते में बिलकुल नहीं है, वही हम कहते हैं कि पत्ते का रंग है। काली वस्तुएँ वे हैं जो उन सब सातों रंगों को खाती हैं। सफ़ेद वस्तुएँ वे हैं जो उन सातों मेंसे एक को भी नहीं खाती हैं, सबको लौटा देती हैं। यह प्रकृति का नियम प्रत्यक्ष जगत् में मालूम होता है, किंतु नियम प्रत्येक स्थान पर एकही है। वही नियम बाह्य जगत् में है और वही आभ्यन्तर जगत्

में भी है। आभ्यन्तर जगत् में इस नियम को देखो। जिस प्रकार सूर्य में ये सात रंग हैं भी और नहीं भी हैं, उसी प्रकार परमेश्वर में भी सब गुण हैं भी और नहीं भी। इसी का नाम माया है। जिस बात को हम पूर्ण रूप से व्याख्या न करसकें, उसी का नाम माया है। संसार के लोगों को जो गुण दिये जाते हैं, वह वस्तुतः उनके नहीं हैं। वह परमात्मा के हैं। किंतु मनुष्य के गुण वह इस कारण कहलाते हैं कि वह इनके साथ काम करता है, अर्थात् उनको वास्तिक स्रोत की ओर लौटाता है। धन वाला धनको व्यय करने के कारण धनी बनाहै, बुद्धिमान् बुद्धिको व्यय करनेसे बुद्धिमान् बना है। दाहना हाथ बाएँ से अधिक बलवान् क्यों है? क्योंकि वह शक्ति का प्रयोग करता रहता है, अर्थात् कलेरोफाइल (chlorophyil) के समान ये सब सदैव काम किया करते हैं। प्रकृति का एक नियम यह है कि जितना व्यय करोगे उतना पाओगे। काले मनुष्य वह मनुष्य हैं जो कहते हैं "यह भी मेरा है,वह भी मेरा है"। सफेद वह हैं जो प्रत्येक वस्तु को परमेश्वर के समर्पण करते चले जाते हैं, अर्थात् जो परोपकार करते हैं अथवा जो अपने प्रत्येक काम को परमेश्वर के लिये करते हैं। मतलब यह कि वे यह नहीं कहते कि अमुक काम में हम ने यों सफलता प्राप्त की, वरन् वे इस सबको परमेश्वर के कारणसे कहतेहैं। शाह महमूद-ग़ज़नवी का एक सच्चा मित्र आयाज़ नामक था जो वास्तव में घसियारा था, किंतु बादशाह की मित्रता के कारण इसका यहाँतक उत्सर्ग हुआ कि वह मंत्री के पद पर नियुक्त किया गया। जब उसका उत्सर्ग हुआ तो कई ईर्ष्या-युक्त पुरुषों, डाहियों को बुरा मालूम हुआ। और ये इस चिंता में लगे कि इसको किसी प्रकार नीचा दिखायें; अतः उन्होंने

महमूद से शिकायत की कि आयाज़ प्रति दिन ख़ज़ाने में जाता है और वहाँ से नित्य रत्न निकाल लेजाता है। महमूद ने चाहा कि उसको अपनी आँख से देखे। एक दिन जब आयाज़ अपने नियत समय पर खजाने में गया, तो लोगोंने बादशाह को सूचना दी। महमूद उन लोगोंके साथ वहाँ गया और झरोखों के द्वारा देखने लगा। वहाँ क्या देखता है कि आयाज़ ने अपने मंत्री वेष के सब वस्त्र उतार कर एक ओर रखदिए और अपने खुरपे को अपने सामने रख लिया, और कंबल को बिछाकर उसपर नमाज़ पढ़रहा है और यह स्मरण कर रहा है कि हे भगवन्! यह मंत्रित्व मेरा नहीं है, यह तेरा है; यह मंत्रियों के वस्त्रादि मेरे नहीं हैं, तेरे हैं; यह शरीर में शक्ति तेरी है; यह आँख में ज्योति तेरी है; यह बाहुओं में बल तुम्हारा है—अर्थात् वह अपने समस्त रंगों को जो जहाँ से आए थे, वहाँ को वापिस लौटा रहा था और प्रेम से तार २ रोता था। जब आयाज़ इससे निवृत्त होकर जाने का संकल्प करने लगा, तो महमूद तत्काल वहाँ पहुँच गया और आयाज़ से कहने लगा कि तुम मेरे गुरु हो, तुमने मुझ को बचा लिया, नहीं तो मैं तो संसार के उन प्रलोभनों में डूब चुका था। अतः सफलता की पहली शर्त यह है कि हृदयों में प्रकाश भर जाय। प्रकाश अर्पण से भर जाता है। कर्म करने का तुम को अधिकार है, किन्तु कर्म करने के साथ जो स्वार्थपरता लगी हुई है, इसको छोड़ दो। जिन लोगों और जिन जातियों को सफलता हुई है, उनको इसी प्रकार व्यवहार करने से हुई है। यदि किसी इतिहास या जीवन-चरित्र में इसके विरुद्ध लिखा है कि कोई व्यक्ति या कोई जाति स्वार्थपरता के साथ काम करके कृतकार्य हुई है, तो उसके सम्बन्ध में राम

अत्यन्त ज़ोर के साथ कहता है कि वह ग़लत है और सरासर झूठ है । आर्थर हेल्प्स (Arther Helps) ने ऐसे ही अवसरों पर कहा है कि मुझको इतिहास मत दिखाओ, क्योंकि वह अवश्य मिथ्या होगा । जितना ही तुम संसार के पीछे पड़ोगे, उतना ही वह तुम से दूर रहेगा ।

भागती फिरती थी दुनियाँ, जब तलब करते थे हम ।
अब कि जब नफ़रत हुई, वह बेकरार आने को है ॥

निदान जब तक तुम अपने मन को हाय-हाय वाय-वाय में रखते हो, उस समय तक तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता है । परमेश्वर आनन्द है । जो मनुष्य आनन्द में रहता है, वह परमेश्वर में रहता है, और परमेश्वर उसमें रहता है । परमेश्वर का ध्यान करने की विधि यह है कि जो वस्तु तुम्हारे पास मौजूद हो, उसपर सन्तोष करके उससे लाभान्वित हो । अतः इस समय जितना प्रकाश या ईश्वरीय ज्योति तुम्हारे पास मौजूद है, उसको बर्ताव में लाओ । उसके पश्चात् तुमको आगे मार्ग मिलेगा । इस रीति पर व्यवहार करने से धार्मिक लड़ाई-झगड़े तत्काल बन्द हो सकते हैं । आप प्रश्न करेंगे कि यह कैसे सम्भव है ? इसका उत्तर स्पष्ट है । आप अपने धार्मिक नियमों को व्यवहार में लाइये, फिर देखिये कि धार्मिक लड़ाई-झगड़े बन्द होते हैं या नहीं । लड़ाई-झगड़े तो उस मार्ग के छोड़ देने से उत्पन्न होते हैं । आपके पास एक लालटैन है जो दो सौ क़दम तक तुमको तुम्हारा रास्ता दिखला सकती है । अब यदि आप इस प्रकाश के सहारे दो सौ पग तक चले जाओ, फिर वहाँ से वह और दो सौ क़दम तक आपको ले जा सकेगी । इसी तरह पर उस

लालटैन के सहारे से, जिसमें केवल दो सौ क़दम तक प्रकाश डालने की शक्ति है, आप कोसों तक पहुँच सकते हैं, किन्तु यदि आप पहले ही से अपनी कोसों की मंज़िल का ख़याल करने लगें, तो परिणाम क्या होगा। स्पष्ट है कि लड़ाई-झगड़ा उत्पन्न होगा। यही दशा तुम्हारे धार्मिक सिद्धान्तों की है। यदि तुम उन पर व्यवहार करने जाओगे, कभी लड़ाई-झगड़े की दशा न आवेगी। यदि तुम उनके प्रकाश को पृथक रखकर पहले तर्क-वितर्क करने लगोगे, तो झगड़ा होना आवश्यक है। धार्मिक युद्ध केवल वही लोग करते हैं जो अपने भीतर के प्रकाश को व्यवहार में नहीं लाते हैं—

सद जाँ फिदाए—आँकि ज़ुबानों-दिलश यकेस्त।

अर्थ—जिनका दिल और वाणी एक है, उनपर सैकड़ों जानें नौछावर (कुरबान) हैं।

कदाचित् इसपर यह आपत्ति हो कि हम तो भूमि पर रहते हैं, हमसे भूमि की बातें कहना चाहिये, यह अलौकिक बातें हमारे किस काम की। प्यारे! इसका यही उत्तर है कि यहाँ धरती पर भी ऐसा ही आचरण करना चाहिये—अर्थात् हाथ रहे काम में और मन रहे राम में। जब कुमरी (घुग्घी) सरो की शाखा पर बैठती है, उसकी जिह्वा से मीठे-मीठे राग और स्वर अपने आप ही निकलने लगते हैं। इसी तरह जब आपका मन उस ईश्वरीय प्रकाश से भर जाता है, तो आपके मन से भी वे प्यारे-प्यारे राग आप ही निकलने आरम्भ हो जाते हैं। यह लैम्प जो रक्खा हुआ है, इससे प्रकाश क्यों निकलता है। कारण यह है कि इसकी चिमनी, जो इसका वाह्य

शरीर है, स्वच्छ और निर्मल है। इस कारण इसके भीतर का प्रकाश बिना रोक बाहर चला आता है। अब स्वच्छ होने से क्या प्रयोजन है। उसका प्रयोजन यह है कि उसने अपने मन की कालिमा और द्वेष-भाव को निकाल दिया है। इसी प्रकार यदि तुम भी अपने मन की कालिमा और अहंकार के भाव को निकाल दो, तो तुम्हारे भीतर का प्रकाश भी अपने आप बाहर निकल आएगा। यथा—

कब लिबासे-दुनयवी में छिपते हैं रौशन ज़मीर।
जामए-फ़ानूस में भी शोला उरयां ही रहा॥
कब मुबुकदोश रहे कैदीये-ज़िंदानें-वतन।
बूए-गुल फाँदती है बाग़ की दीवारों को॥

कदाचित् यह कहा जाय कि हम अपने धार्मिक सिद्धांतों की पाबन्दी करते हैं और धार्मिक सिद्धान्त चाहते हैं कि झगड़ा किया जाय। इसका उत्तर यह है कि धार्मिक सिद्धान्तों का उद्देश कदापि लड़ाई-झगड़ा करना नहीं हो सकता। प्रत्येक धर्म का पहला सिद्धांत यह है कि ईश्वर को जानो और मानो। क्या इसपर आप आचरण करते हैं?—कदापि नहीं। यदि आप इसपर चलते होते, तो क्या आप परमेश्वर की इतनी भी परवा और इज़्ज़त न करते कि जितनी आप अपने जिले के कलेक्टर की करते हैं। यदि इस समय इस जमायत (समारोह) में कलेक्टर साहब आ जायँ, तो सब की साँस बन्द होजायगी। प्रत्येक समय इस बात का ध्यान करेंगे कि कोई भद्दा वाक्य मुख से न निकल जाय, अथवा कोई निर्लज्ज चेष्टा न हो जाय। आप कभी कलेक्टर साहब के सामने चोरी न करेंगे, कभी उनके सामने किसी स्त्री को कुदृष्टि से न देखेंगे, और न उनके सामने कोई खराब वार्ता करेंगे।

बबीं तफ़ावत राह अज़ कुजास्त ता बकुजा !

अर्थः—देखिये, एक से दूसरे में अन्तर कितना है ।

आपका धर्म सिखाता है कि परमेश्वर सर्वत्र विराजमान है । किन्तु शोक है और रोना आता है कि आप इस बात को जान कर भी हर प्रकार की पूर्वोक्त बातें करते हैं, और आपके मन में तनिक भी ईश्वर का भय नहीं आता है । यदि हम लोग परमेश्वर के अस्तित्व को मानते और जानते होते, तो उसकी उपस्थिति में स्त्रियों की ओर तकते हुए आँखें फूट न जातीं, झूठ बोलते समय ज़ुबान न निकल पड़ती ? ब्रह्मश्रोत्री को ब्रह्मनेष्ठी होना चाहिये । यदि आचरण न हुआ तो विद्या व्यर्थ है, वरन् हानिकारक है । मस्तिष्क की नसें जो ज्ञान को ग्रहण करती हैं, उनको ज्ञानेंद्रिय कहते हैं और जो नसें भीतर के ज्ञान को बाहर व्यवहार में लाती हैं, उनको कर्मेंद्रिय कहते हैं, और स्वास्थ्य की दशा स्थिर रखने के लिये समस्त इंद्रियों को काम में लाना चाहिये, अन्यथा परिणाम अच्छा न होगा । जो ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनेष्ठी नहीं होते, उनकी यह दशा होती है कि वह विद्या को भीतर ठूँसते जाते हैं, किन्तु उसको बाहर नहीं निकालते हैं, अर्थात् एक प्रकार की इन्द्रियों से काम लेते हैं और दूसरे प्रकार की इन्द्रियों को बेकार रखते हैं । इनको आध्यात्मिक क़ब्ज़ और बुद्धि का अजीर्ण हो जाता है । इसीके कारण से वह लड़ाई-झगड़े में पड़ते रहते हैं । अतः शर्त यह हुई कि संसार में सफलता होने के वास्ते हमको चाहिये कि जितनी बुद्धि हमारे पास है उसको केवल अक़ली (तर्क वाली) ही न रक्खें, वरन् उसको व्यावहारिक भी बनावें । शर्त दूसरी सफलता की यह है कि ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये, चाहे आप नूतन रौशनी

(विचार) के हों, या पुरातन रौशनी के; चाहे आपकी पुस्तकों ने उस पर ज़ोर दिया हो अथवा न दिया हो, कुछ परवाह नहीं है। राम आप से यह कहता है कि सफलता के लिये पवित्रता और ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि भारतवासी बचे रहना चाहते हैं तो वीर्य को सुरक्षित रक्खें, अन्यथा कुचले जायेंगे। यह दीपक आपके सामने जल रहा है, यह क्यों जलता है ?—इसके बीच के भाग में तेल भरा हुआ है। वह तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़ता है, और ऊपर आकर प्रकाश रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि इसके तेल वाले भाग में कोई छिद्र हो जाय, तो उसका तेल धीरे-धीरे बह जायगा, और फिर इससे प्रकाश न निकल सकेगा। यही दशा तुम्हारी है। यदि तुम्हारे भीतर का वीर्य नीचे न गिरेगा, तो यह ऊपर चढ़कर मस्तिष्क में जाकर आत्मिक ज्योति बन जायगा। किन्तु यदि तुम इसके विरुद्ध करोगे, अर्थात् अपने वीर्य को गिराओगे, तो तुम्हारी वही दीपक की सी दशा होगी। जिन लोगों के शरीर से कोई अपवित्र कर्म नहीं होता, या जिनके मन में कोई अपवित्र विचार उत्पन्न नहीं होता, उनका वीर्य ऊपर चढ़कर बुद्धि में परिवर्तित हो जाता है। ऐसी ही अवस्था को इंगलैंड के प्रसिद्ध कवि ने यों वर्णन किया है—

My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure.

(Tennyson)

मेरी शक्ति है दसगुणी, किस लिये ?
कि मेरा हृदय शुद्ध है, इस लिये ॥

दस ज्वानों की मुझ में है ताक़त ।
क्योंकि मुझ में है इफ़्फ़तो-अस्मत ॥

हनुमान सबसे बड़ा वीर किस लिये था ?—क्योंकि वह यती था । कहते हैं कि मेघनाद बड़ा योद्धा था । उसको वही व्यक्ति मार सकता था जिसके हृदय में १२ वर्ष तक कोई अपवित्र विचार न आया हो । यह कौन व्यक्ति था ?—यह श्री लक्ष्मणजी थे । भीष्म का नाम भीष्म इसी कारण से पड़ा कि वह जितेंद्रिय थे । सर आइज़क-न्यूटन जैसा प्रसिद्ध तत्त्वान्वेषक, जिसके ऊपर आज इँगलैंड को इतना अभिमान है, सत्तासी वर्ष तक जीवित रहा। मरते समय तक उसके होश हवास बहुतही ठीक थे, क्योंकि वह जितेंद्रिय था, और अत्यंत पवित्र था । जिस तत्त्ववेत्ता ने संसार के तत्त्वज्ञान को पल्टा दिया, वह कौन था?—वह कैंट (Kant) था । यह बड़ा भारी यती था । इसके मन में कभी अपवित्र विचार तक नहीं आया । अमेरिका के हेनरीडेविड थोरो (Henry David Thoreau) और जर्मनी के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हर्बर्टस्पेंसर (Herbert Spencer) दोनों बड़े जितेन्द्रिय थे । इस समय अमेरिका, इँगलैंड, जापान आदि ये देश उन्नति कर रहे हैं, इसका क्या कारण है ? कारण यह है कि इनके यहाँ के गृहस्थी भी आपके यहाँ के जितेंद्रियों से अच्छे हैं । प्रथम तो उनके विवाह बीस वर्ष के पश्चात् होते हैं, फिर उनकी स्त्रियाँ कैसी शिक्षिता होती हैं कि जब पुरुष और स्त्री मिलते हैं तो उत्तमोत्तम विषयों पर वार्तालाप करते हैं, एक दूसरे के सत्संग से लाभ उठाते हैं, कभी अपवित्र विचारों का अवसर नहीं आने पाता । इसके विरुद्ध आप के यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होतीं । आप के यहाँ पुरुष और स्त्री की भेंट के अर्थ ही

अपवित्र विचार हैं। और ठीक भी है। जब वह कुछ जानती ही नहीं, तो आप उनसे क्या बातें करेंगे, सिवाय उन अपवित्र बातों के! अपने नित्यप्रति के जीवन में देखो कि पवित्रता का आप के कामों और संकल्पों पर क्या प्रभाव होता है। यदि आप पवित्र हैं, अर्थात् यदि आप अपने वीर्य (Sex energy) को सुरक्षित रक्खे हुए हैं, तो आप बहुत शीघ्र कृतकार्य होंगे। राम जब प्रोफेसर था, उसका निजी अनुभव क्या था? और जिस समय राम सफल या असफल विद्यार्थियों की सूचि बनाता था और उनसे पूछा करता था कि परीक्षा से कुछ दिन पहले उनकी क्या अवस्था थी? तो राम ने इससे भी परिणाम निकाला था कि जो विद्यार्थी परीक्षासे पहले उत्तम और पवित्र विचार रखते थे, वह कृतकार्य होते थे, और जो अपवित्र विचार रखते थे और सदैव भयभीत रहते थे, कि कहीं असफल न हों, वह अनुत्तीर्ण ही रहते थे। अतः सिद्ध है कि जैसे जिसके विचार हृदय के भीतर होते हैं, वैसाही उसको परिमाण प्रकट होता है। इस बात का प्रमाण इतिहास से भली भाँति मिल सकता है। पृथ्वीराज प्रसिद्ध योद्धा जो कई एक युद्धों में मुसलमानों को पराजित कर चुका था, अंत में भोग विलास में डूब गया और आप को आश्चर्य होगा कि अंतिम बार जब वह युद्धक्षेत्र को गया, तो उसकी कमर उसकी रानी ने कसी थी। परिणाम क्या हुआ?—युद्धक्षेत्र से मुहँ काला करके असफल लौट आया। नैपोलियन जिसके साहस और वीरता की धाक सारे संसार में जम गई थी, जब वाटरलू के समरांगण को जाने लगा, तो उसके पहले शाम को वह अपने आपको एक अपवित्र चाह में गिरा चुका था। परिणाम स्पष्ट है कि

बड़ी विकट हार हुई। अभिमन्यु कुरुक्षेत्र के युद्ध का प्रसिद्ध योद्धा जिस दिन मारा गया, उससे पहले सायंकाल को वह अपनी नवीन प्रियपत्नी के पास गया था, और वहाँ वीर्य गिरा कर आया था। स्मरण रक्खो, अपवित्र वस्तु में कुछ आनंद नहीं है। जिस प्रकार गुलाब का फूल कैसा सुगंधित होता है, किंतु उसमें शहद की मक्खी भी रहती है। जब आप ने उसको नाक में लगाया, उसने नाक की नोक पर डसा। इस प्रकार संसार की कान्ति और कटाक्ष तथा सांसारिक वस्तुएँ बड़ी चित्ताकर्षक होती हैं और बहुत ही भली जान पड़ती हैं, और वह आपके मनों को लुभाती हैं। किंतु चखकर देख लो कि इनमें एक आध्यात्मिक विष है जो आपको उन्नति करने से वंचित रक्खेगा। ये अनुचित अनुराग, ये अनुचित कामप्रियता, ये अनुचित सतीत्व का भंग करना, ये सब उस गुलाब के फूल के तद्वत् हैं, जिनमें शहद की मक्खी है और जो आपके नाक की नोक पर काट लेती है। अतः नियम यह है कि यदि तुमको ये सांसारिक बातें नहीं हिला सकतीं, तो तुम संसार को अवश्य हिला सकते हो।

तीसरी शर्त सफलता की एक आध्यात्मिक शर्त है। एक बादशाह की कथा है कि उसने एक कमरे में एक सींग लटका रक्खा था और उस सींग की खोल में पानी भरा था। बादशाह ने यह विज्ञापन दे रक्खा था कि जो कोई इस सींग का सब पानी पी ले और सींग खाली कर दे, तो उसको वह अपना समस्त राज्य दे देगा। बहुत से लोग आये और उन्होंने पानी पिया, किन्तु कोई भी उसको खाली न कर सका। वह सींग देखने में तो ज़रा सा जान पड़ता था किन्तु उसका सम्बन्ध समुद्र से था और

यही कारण था कि वह खाली नहीं होता था। इस तरह पर यद्यपि आपके शरीर ज़रा ज़रा से हैं, किन्तु उनका गुप्त सम्बन्ध इन समुद्रों के समुद्र ईश्वर स्वरूप के साथ है। जो व्यक्ति इस सम्बन्ध का लगाए रखता है, और इसको स्थिर रखता है, उसकी शक्ति अनन्त है। आप सिवाय उसके और कुछ नहीं हो। जब यह मामला है, तो परमेश्वर तो सत्यकाम और सत्य संकल्प है, अतः आपके अन्तःहृदय की तैह में जो ख़याल है, वह सत्य होना चाहिए, और उस ख़याल की सदैव विजय है। यथाः—

दौलत गुलामे-मन शुदो-इक़बाल चाकरम्

अर्थ—दौलत मेरी गुलाम और इक़बाल (विभूति) मेरी सेवका हो गई है।

अब राम कुछ उदाहरण इतिहास से देगा जिस से सिद्ध होगा कि यह सिद्धान्त बिलकुल ठीक है। सिंहविक्रम महाराजा रणजीतसिंह अपनी सेना लिए हुए अटक नदी के निकट पड़ा हुआ था। उस पार शत्रु की सेना थी। रात का समय था। अन्धकार छाया हुआ था, न वहाँ पर कोई नाव थी जिसके द्वारा पार उतरा जाय, और न वहाँ कोई दूसरा साधन मालूम होता था। अब बड़ी कठिनता थी कि क्या किया जाय। सिपाहियों ने रणजीतसिंह से जाकर अपनी कठनाइयें वर्णन कीं। वह तो जैसा श्रीकृष्ण जी ने कहा है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

अर्थः—"हे अर्जुन, तू सुख और दुख तथा हानि और लाभ को सम करके एवं हार जीत का विचार न करके

युद्ध के लिये खड़ा हो। यदि तू युद्ध नहीं करेगा तो तू महापाप का भागी होगा।" इस विचार में मग्न था। उसको न विजय की प्रसन्नता थी और न पराजय का शोक था। वह तो इस ख़याल में मस्त होकर अपना धर्म पालन करता था। उसने अपने सिपाहियों से कहाः—

जाके मन में अटक है, वाको अटक यहाँ।
जाके मन में अटक ना, वाको अटक कहाँ॥

यह सुनतेही सेना फाँद पड़ी और उस पार पहुंच गई। उसको देखकर शत्रु का साहस टूट गया कि जब ऐसे विशाल अगम नद से यह लोग बिना किसी नौका आदि के आन की आन में पार उतर आए हैं, तो इनका सामना करना असंभव है, भाग खड़े हुए, और क्षेत्र रणजीतसिंह के हाथ में रहा।

इसी तरह एक बेर हज़रत मोहम्मद साहब एक मुहिम (युद्ध) पर जाने के लिये बड़ी तैयारी कर रहे थे। किसी ने कहा कि आप इतनी तैयारी तो कर रहे हैं किंतु यदि आपकी हार हुई तो कितनी लज्जा होगी और इसके साथ ही आप का साहस भी टूट जायगा। इसपर वह खिल खिलाकर हँस पड़े और कहने लगे—"परिश्रम करना मेरा काम है, न कि सफलता चाहना। मैं तो अल्लाह के हुक्म से काम कर रहा हूँ, अपना फ़र्ज़ अदा कर रहा हूँ, इससे अधिक मुझको कुछ संबंध नहीं है" फ्रांस और जर्मनी की लड़ाई में महाराज फ्रैडरिक की बिलकुल हार हो गई थी। शत्रु के सिपाही उसके दुर्ग में घुस गये थे और रंगरलियाँ मचा रहे थे; किंतु फ्रैडरिक को अपने पक्ष में भगवान होने का निश्चय था। अतः उसने साहस को हाथ से न दिया।

उसने अपने लोगों को जमा किया और उन में से कुछ को एक ओर भेज दिया, कि तुम टीले पर जाकर खड़े हो, कुछ को दूसरी ओर भेज दिया, इसी प्रकार चारों ओर भेज दिया । इसके बाद स्वयं साहस पकड़े हुए बेधड़क दुर्ग के भीतर घुस गया और सिपाहियों से बोला कि तुम लोग हथियार रखदो। उन्होंने प्रश्न किया कि क्यों ? उसने कहा, तुम नहीं देखते हो कि मेरी सेना सब ओर से आ रही है और तुम घेरे गए हो। यह देखकर वह लोग भयभीत होगये । और सब हथियार उसके सामने रख दिए । यदि तुम्हारा हृदय ईमान से भरा है , तो एक शत्रु क्या, सारा संसार तुम्हारे सम्मुख हथियार डाल देगा । यही हृदय का उत्साह है जिसने विकट हार को पूर्ण विजयमें परिवर्त्तित कर दिया ।

सारी खुदाई इक तरफ़, फ़ज्ले-इलाही इक तरफ़ ॥
न मँहगे पर न सस्ते पर, नहीं मौक़ूफ़ ग़ल्ले पर ॥
फ़तेह तो बस उसी की है, ख़ुदा है जिसके पल्ले पर ॥

हाथी और सिंह के देह में कितना अंतर है । किंतु देखो, सिंह के उत्साह और साहस के कारण हाथी को अपने शरीर के भारी होने पर भी सामना करना कठिन हो जाता है । हाथी को अपनी शक्ति पर बिलकुल भरोसा नहीं होता । वह सदैव झुंडों में रहता है, क्योंकि उसको संदेह रहता है कि अकेला पाकर कोई उसको खा न जाय । सिंह यद्यपि तनमें उससे छोटा है, किंतु साहस उसमें भरा हुआ है । यही कारण है कि हाथी उसके सामने खड़ा नहीं हो सकता । सिंह अपने भीतर वाले ईश्वर अर्थात् आत्मा को मार नहीं रहा है, वरन् उसको व्यावहारिक रूप से स्पष्ट करता है ।

चीन में एक लड़का था। उसके मां बाप अत्यंत दरिद्र थे। वह यहाँ तक दरिद्र था कि पढ़ने के लिये उसे तेल तक नहीं मिलता था, किंतु उसको पढ़ने का शौक़ था। वह बहुत से जुगुनुओं को एकत्र करके एक कपड़े में बाँधता था और जब वह चमकते थे, उनके प्रकाश से पढ़लेता था। लोगों ने उससे कहा कि तुम यह क्या भद्दी चेष्टा करते हो, ऐसा परिश्रम किसलिये करते हो, क्या बादशाह के वज़ीर तुम्हीं होगे? अहाहा! उसने क्या उत्तर दिया, जिसको सुनकर सबका चित्त प्रसन्न होगया। कहता है, मेरे हृदय में ऐसी उमंगें उठती हैं, जिससे आशा बंधती है कि मैं वज़ीर बनूँगा। अंत में वह लड़का चीन का वज़ीर हो ही गया।

प्रायः लोग कहते हैं कि हम अमुक काम क्योंकर करें? अरे भाई; आत्महत्या या ईश्वर हत्या क्यों कर रहा है। तू शरीर नहीं है, तू स्वयं ही अनंत है, फिर किस प्रकार क्या पूछता है। तुम को क्या ज्ञात नहीं कि जलस्थित विद्या (Hydro Statics) का एक सिद्धांत है जिससे समस्त सागर के पानी को एक ज़रा सा पानी रोक सकता है। इस प्रकार एक मनुष्य सारे संसार को रोक सकता है, यदि वह अपने भीतर की ईश्वरत्व पर खड़ा हो जाय। कारणों का कारण तो तू ही है, फिर सामान या साधन क्या ढूँढता है।

स्काटलैंड का एक बच्चा वहाँ के अनाथालय से भागकर लंडन चला आया। लंडन में संयोग से वह लार्ड मेयर के बाग में पहुँच गया और वहाँ खेलने लगा। संयोग से उधर से एक बिल्ली निकली। बच्चे ने उसकी दुम पकड़ ली

और उससे बातें करने लगा । इतने में निकट से घंटे की ध्वनि सुनाई दी जो लगातार बज रहा था । बस अब वह खिल्ली से बात करने लगा और कहने लगा:—

What does the mad bell say ?

Ton ! Ton !! Ton !!! Whittington, Whittington
Lord Mayor of London !

अर्थः—यह पगली घंटिया क्या कहती है ? टन ! टन !! टन !!? ह्विट्टिङ्गटन, ह्विट्टिङ्गटन, लार्डमेयर आफ़ लंडन ।

वह अपनी इसी बातचीत में था कि संयोग से लॉर्ड मेयर उधर से आ निकला । उसने सुना कि कोई व्यक्ति बात कर रहा है । वहाँ आकर यह हाल देखा । उसने लड़के से पूछा कि क्या कह रहा है ? उसने उत्तर दिया, लार्ड मेयर आफ़ लंडन । लार्ड मेयर बहुत प्रसन्न हुए । उसको अपने यहाँ ले गये, और उसको शिक्षा के लिये स्कूल में भेजा । वहाँ उसने अत्यन्त परिश्रम के साथ पढ़ा, और खूब विद्या प्राप्त की । धीरे-धीरे वह एक दिन लार्ड मेयर आफ़ लंडन हो ही गया ।

एक कवि था । अपनी विद्या में प्रवीण था । उसने बहुत से पद्य कहे और बादशाह के सम्मुख ले गया । बादशाह उनको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और खूब पारितोषिक दिया । बेगमों ने भी उसकी वाणी को पसंद किया, और जब बादशाह महल में आया, उससे इच्छा प्रकट की कि कवि कहीं महल के निकट ही रक्खा जाय । दूसरे दिन बादशाह ने कवि से पूछा कि कहाँ रहते हो ? वह मतलब समझ गया और बादशाह से बोला—"मैं तो

अंधा हूँ ।" यह सुनकर बादशाहने कहा—"जब यह अंधा है, तो कोई हरज नहीं है, इसको महल के निकट एक कमरे में ठहरा दिया जाय ।" निदान, ऐसा ही किया गया । अब वह वहाँ रहने लगा और नौकरों-चाकरों को दिक्क करने लगा । एक दिन लौंडी से कहा कि लोटा उठा दो, हमको आवश्यकता है । उसने कहा, यहाँ लोटा कहाँ है ? कहने लगा—उठा दो । उसने फिर वही उत्तर दिया । निदान, बहुत कहा सुनी के बाद बोल उठा, अरी ! वह क्या पड़ा है, क्यों नहीं उठा देती ? बस लौंड़ी दौड़ी हुई महलों में गई और बेगमातसे कहा "यह मुआ तो देखता है, अंधा नहीं है । यह मुआ हम सब को बराबर घूरता है ।" तत्काल बादशाह को खबर की गई । परिणाम यह हुआ कि दरबार से निकाला गया और अंधा भी हो गया ।

आप कहते हैं, सामान नहीं हैं, कैसे काम करें ?। यह सब संकल्प का खेल है । जब तुम्हारे भीतर निश्चय की शक्ति आ जायगी, तो सब सामान अपने आप तुम्हारे सामने आ जायँगे । देवता (प्रकृति की शक्तियाँ) तुम्हारे लिये अपना स्वभाव बदल देंगे । ऊपर जो उदाहरण वर्णन किये गये हैं, उनसे स्पष्ट सिद्ध है कि अच्छे ख़याल वाले अच्छे होंगे, किंतु बुरे मनोरथ माँगने वाले बुरे होंगे । जैसा ख़याल करोगे, वैसे ही हो जाओगे ।

गर दरे-दिल तो गुल गुजरद गुल बाशी ।
वर बुलबुले बेक़रार बुलबुल बाशी ॥
सौदाये-बला रंजो-बला मी आरद ।
अंदेशा-ए-कुल पेशा कुनी कुल बाशी ॥

अर्थः—यदि तेरे चित्त में पुष्प (प्यारे) का ख्याल होगा तो तू पुष्प (प्यारा) हो जायगा, और यदि चंचल बुल

गुल का, तो व्याकुल बुलबुल हो जायगा। (स्मरण) रहे, कि दुखों का ख्याल करने वाला दुःख और कष्ट अपने ऊपर ले आता है, और सब का शुभ चिन्तक स्वयं सब हो जाता है।

प्रत्येक प्रार्थना सुनी जाती है। जो प्रार्थना दिल से निकलती है वही स्वीकृत होती है। इसका यह तात्पर्य है कि जैसा आपका संकल्प होगा, उसको आपके भीतर का सच्चा बल पूरा कर देगा। आप में वह शक्ति विद्यमान है जिससे आप देवताओं की बराबरी कर सकते हैं। देवता के अर्थ प्रकृति की शक्तियों के हैं। यदि आप वेद के अनुसार चलें, तो आप देवताओं तक पहुँच सकते हैं। आप अपने विश्वास और निश्चय के बल से प्रकृति की शक्तियों को खींचकर ला सकते हैं, और उनसे बराबरी कर सकते हैं। किंतु आपने उन साधनों को भुला दिया है। जब तक उन साधनों को आचरण में लाते थे, तब तक उस प्रकार के विचार हृदय में खचित थे, उस समय वैसे ही परिणाम निकलते थे। किंतु जब से उन उपायों को छोड़ा, और खराब विचारों ने दिल में जगह पकड़ी, रंगत भी बदल गई। जब हिन्दुओं में यह विचार उत्पन्न हुआ:—

"हमको नौकर राखो जी, हमको नौकर राखो जी।
मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा।"
तू दीवान, तू दीवान, तू दीवान मेरा॥

और हिंदुओं में एक गुण विशेष यह है कि वह सदैव सच्चे होते हैं। अतः उनकी वह स्वाभाविक सच्चाई उक्त विचार पर लगाई गई। और उनका क्योंकि यह हार्दिक विचार था, इसलिये उनकी यह मनोकामना पूरी हुई।

और वह इस तरह से बिदेशियों के गुलाम (दास) होगये। स्पष्ट है कि जैसा ख्याल करोगे, वैसा पाओगे। हमें अपने ख्यालों को सुधारना चाहिए। बुद्ध भगवान् ने भी यही सिखाया है। अतः न अपने संबंध में और न किसी अन्य के संबंध में अपने हृदय में मलीन विचारों को आने दो। भीतर और बाहर ईश्वर ही ईश्वर को देखो। मोहम्मद साहब के हृदय में यह बात समागई थी, इस कारण उन्होंने सिखाया था कि (ला इलाह इल्लिल्ला) "नहीं है कुछसिवाय परमेश्वर के"। हज़रत ईसा मसीह की नस नसमें भी यही विचार दौड़ रहा था। अतः उन्होंने भी यही कहा कि "मैं और मेरा बाप (ईश्वर) एकही है" (I and my father are one.)। अब उसको लोग समझें या न समझें; मगर असल बात यही है। जब हज़रत मोहम्मद साहब के दिलमें यक़ीन आ गया, तो उन्होंने कहा कि अगर सूर्य मेरे दाहिने ओर और चाँद मेरे बाईं ओर आकर धमकाने लगे कि पीछे हट जाओ तब भी मैं पीछे न हटूँगा। एक आदमी जो जंगलों का रहने वाला था, उसके हृदय में इस विश्वास की आग भड़क उठी और उसने अरब के मरुस्थल में इसके काले रेत के दानों को भड़काया। वह ज़र्रे बारूद के छर्रे बन गए, और योरप वा अफ़रीका के पश्चिमी सिरे से लेकर एशिया के पूर्वी सिरे तक एक शताब्दी के भीतर फैलगए। यह शक्ति है आत्मबल की, यह शक्ति है विश्वास की, यह शक्ति है निश्चय (यक़ीन) की। इस पर भी कहते हो कि सामान की आवश्यकता है? सामानों के सामान तुम स्वयं हो। इस विचार को ब्रह्मविद्या कहते हैं।

जिस प्रकार एक सुन्दर बालक चेचक के रोग से बिलकुल कुरूप होजाताहै और उसकी जान पर बन आती

है, और उसको कुछ लाभ गाय के थन के लिंफ़ (lymph) का टीका लगाने से होता है; इसी तरह हिंदू जाति को अविद्या की चेचक निकली है, और वह कुरूप होती जाती है. उसका अंत भी निकट जान पड़ता है, अतः उसको भी टीका लगाने की आवश्यकता है। इस टीके के लिये लिंफ़ कहाँ से आवेगा? वह भी गोथन से लिया जायगा। गौ के अर्थ उपनिषद् के हैं। और वह लिंफ गौ रूपी उपनिषद् से लिया जायगा। मतलब यह है कि ब्रह्मविद्या को उपनिषदों से सीखो, और उसपर आचरण करो, तो यह अविद्या की चेचक तत्काल अच्छी होजायगी।

लोग कहते हैं कि इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि जो जाति एक बेर उन्नति करके अवनति को प्राप्त हुई, फिर वह दुबारा उन्नति नहीं करती। यह ख्याल तुच्छ है। आपका इतिहास क्या? वही एक हज़ार वर्ष का इतिहास, और उसपर यह अभिमान। अरे भाई! वह तो एक युग का भी पूर्ण इतिहास नहीं है। प्राकृतिक विकास का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि कोई वस्तु नष्ट नहीं होती. किसी न किसी रूप में वह विद्यमान रहती है। कहते हैं कि:—

"हर शाख रंग आमेज़ी दर फ़स्ले-ख़िज़ाँ अंदाख़्ता।"

अर्थः—प्रत्येक शाख (टहनी) पतझड़ी की ऋतु में फली फूली है। कैसा (आश्चर्य) है।

फिर देखो, प्रकृति तुम्हें बताती है कि तारे पूर्व से पश्चिम को जाते हैं और फिर वहाँ से पूर्व को लौट आते हैं। यही दौर या चक्र है। इसी प्रकार सौभाग्य का तारा पूर्व से पश्चिम को गया और, फिर वहाँ से पूर्व को लौटा आ रहा है। इतिहास इसकी साक्षी देता है। देखो, एक युग

था, जब भारतवर्ष का तारा अभ्युदय पर था; वहाँ से पश्चिम को चला, फारस में आया । उसके पश्चात् आस्ट्रिया आदि की वारी आई । वहाँ से यूनान पहुँचा । यूनान को छोड़ कर रूम गया । रूम के बाद स्पेन आदि की वारी आई । फिर इँगलैंड पर कृपादृष्टि हुई । वहाँ से अमेरिका गया । इस समय अमेरीका का पश्चिमी भाग कैलीफ़ोर्निया अत्यंत उन्नति पर है । वहाँ से जापान में आया । फिर अब कैसे कह सकते हैं कि भारतवर्ष वंचित रहेगा, इसकी बारी नहीं आयगी ?

ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

राम ढँढोरा

यह पत्र स्वामी राम ने यंगमेन्स इण्डियन एसोसियेशन (भारतीय नव युवक समाज) लाहौर के वार्षिकोत्सव पर पढ़ने के लिये लाला हरदयालजी एम. ए. के पास भेजा था।

एकता, एकता। प्रत्येक व्यक्ति एकता की आवश्यकता का अनुभव कर रहा है। लाखों शक्तियाँ एक दूसरे को शिथिल कर रही हैं। इस लिये कोई परिणाम जन्य शक्ति प्रकट नहीं होती। करोड़ों मस्तिष्क और हाथ चल रहे हैं, किन्तु कौन जानता है, किस ओर जा रहे हैं। हज़ारों मत मतान्तर अपनी अपनी नौकाएँ अपने २ काल्पनिक मन्तव्यों की ओर खेने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु कोई खेना नियम पूर्वक नहीं हो रहा है। भारत की यह वर्तमान अवस्था है। पतवारों को जहाँ के तहाँ रहने दो, अपने अपने स्थानों पर डटे रहो, हटो मत, किन्तु एक दिशा में खेना आरम्भ कर दो। इस प्रकार के अविरोध (संयोग, Harmony) से, अर्थात् अनेकता में एकता से, उन्नति का दृढ़ निश्चय होता है। बस अपने अपने स्थानों पर डटे हुये काम करते रहो, और गाते बजाते आगे बढ़ते चलो। जातीय लाभ आप से यही चाहता है। और समस्त (जाति) के लाभ में प्रत्येक व्यक्ति का हित सम्मिलित है।

इस प्रकार वाक्यालंकार से प्रलाप करना तो बहुत सहज है; किन्तु फिर भी अभी तक भारतवर्ष में प्रेम और एकता के भावों का इतना अत्यन्त अभाव क्यों प्रत्यक्ष है?

इसके मुख्य कारण ये हैं:—

(क) व्यावहारिक ज्ञान की न्यूनता।

(ख) जन संख्या की अधिकता।

आओ, इन पर हम अनुक्रम से विचार करें।

(क) व्यावहारिक ज्ञान की न्यूनता।

मुसलमानी राज से पहिले खुरासान देश निवासी अलबरूनी ने इस देश भर में यात्रा की थी। यह एक अनुभवी तत्त्ववेत्ता और बहुत बड़ा विद्वान हुआ है। उसने संस्कृत विद्या पढ़ी और हमारे शास्त्रों को वैसे ही उत्साह के साथ पढ़ा जैसे कि उसने (यूनानी तत्त्ववेत्ता) अरस्तू और अफलातून के तत्त्वज्ञान को पढ़ा था। वह तत्कालीन भारतवर्ष का विस्तृत वर्णन वैसा ही कर गया है जैसा उसने अपनी आँखों से देखा था। वह हिन्दुओं के दर्शन, काव्य और ज्योतिष शास्त्र का अत्यन्त सन्मान एवं आदर के साथ उल्लेख करता है। वह कई एक पण्डितों की विद्वत्ता की, जिन से उस की भेंट हुई थी, अत्यन्त प्रशंसा करता है। किन्तु जन साधारण की दशा और स्त्रियों की अवस्था को अत्यन्त शोचनीय बतलाता है। उनको वह शारीरिक, मानसिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक रूप से अनाथ, उपेक्षित और सब प्रकार से पददलित (पतित) बतलाता है। सामाजिक, धार्मिक, और राजनैतिक रूप से भी वे अलग थलग हैं। इन लोगों के अगणित जत्थों के जत्थे अपने विक्षिप्त चित्त और बिछड़े हुए दल होने तथा

अनियमता के कारण मुसलमान विजेताओं के सामने, जो महमूद ग़ज़नवी के सेनापतित्त्व में प्रतिवर्ष भारत को लूटने के उद्देश्य से आते हैं, धूलि के कणों के समान उड़ते चले जाते हैं।

इसके पश्चात् बाबर भारतवर्ष के निवासियों की इस तरह शिकायत करता है कि "ये लोग नवीन वस्तु के उत्पन्न करने की कुछ भी योग्यता व शक्ति नहीं रखते, और व्यावहारिक रूप में शिल्प वाणिज्य से बिल्कुल अनजान हैं। न तो इनके यहाँ कहीं उत्तम इमारतें वा बागीचे हैं और न नहरें, यहाँ तक कि इनके यहाँ बारूद भी नहीं है।" और आगे चलकर वह इस प्रकार दोष लगाता है कि "ये लोग इस योग्य भी नहीं हैं कि एक दूसरे से तनिक स्वतंत्रता पूर्वक मिलें जुलें।"

इन कथनों में व्यक्तिगत योग्यता और अत्युक्तियों को, यदि कोई हों, छोड़ करके हमको अत्यन्त शोक के साथ कहना पड़ता है कि ये वर्णन सच्चे हैं। यह व्यावहारिक ज्ञान की न्यूनता ही है जिससे भारतवर्ष का पतन हुआ है।

जो कुछ इन विदेशी ऐतिहासिकों ने वर्णन किया है, उसको मौखिक बकवाद से खंडन करना राम के लिये वैसा ही सरल है जैसा कि किसी और के लिये; किन्तु पे प्यारे! ये वर्णन सीधे सादे और सच्ची घटनायें हैं जिनको ये लोग बिना न्यूनाधिक किये लेख रूप में ले आये हैं। और किस तरह मैं इस प्रत्यक्ष प्रमाण से इन्कार कर सकता हूँ। उक्त व्यावहारिक ज्ञान की न्यूनता के अन्तर्गत समाज के समस्त दोष हैं, जैसे दस्तकारी (manual labour) से घृणा, जात पाँत के हेतु नाना विभाग, विदेश यात्रा से घृणा, बाल बिवाह, एवं स्त्रियों की शारीरिक और मान-

सिक समस्त दुर्बलतायें, इत्यादि। इन सामाजिक बुराइयों का दूर करना अत्यन्त कठिन है।

वर्क (Burke) ने क्या ही अच्छा कहा है—

"सुधार एक ऐसी वस्तु है जो प्रसन्नता के लिये दूर फासले पर ही रक्खी रहनी चाहिये"।

खुश चाहो अगर रखना अपने को तुम।
रीफार्म से दूर ही रहो तुम॥

रस्म और रिवाज के बन्धनों को तोड़कर बाहर निकल आना एक बड़े मार्के का काम है। सुधार का काम कार्य-कर्त्ताओं के ऊपर समाज का लांछन और समाज पर कार्य—कर्त्ताओं का लांछन लाता है, और परस्पर छिद्रान्वेषण बुद्धि उत्पन्न करता है जिससे परस्पर द्वेष भावना, मिथ्या मति (गलत फेहमी) और अनबन वा फूट उत्पन्न हो आते हैं। क्या इस फूट से बचने के लिये हम उन बातों को यों ही अटकल पच्चू चलने दें और "हम को अपने मतलब से काम" ऐसा समझ कर अपने पर झाड़ दें? "हमको अपने उद्धार से काम, समाज पड़े चूल्हे भाड़ में।" ओह, कहीं ऐसा सम्भव होता तो क्याही अच्छा था। डूबता समाज तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगा। यदि वह डूबेगा तो तुम को उसके साथ डूबना होगा, और यदि उठेगा तो तुमको उसके साथ उठना होगा। मानो समाज कहता है:—

हम जो डूबेंगे तो फिर तुमको भी ले डूबेंगे।
हम जो उठेंगे तब ही तुमको भी लें उठेंगे॥

ऐसा निश्चय करना कि "कोई व्यक्ति असंपन्न (Imperfect) समाजमें संपन्न (Perfect) होसकता है" सरासर

मूर्खता वा नासमझी है । यह ठीक ऐसा ही है कि हाथ धड़ से अलग कट कर शक्ति की पूर्णता को पहुँच जाय ।

बहुत काल से भारतवर्ष में इस अवेदांती विचार को भारत वासियोंने छाती से लगा रक्खा है जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज के अस्थि-पंजर ढीले पड़गये । ऐ उत्तम आशा दिलाने वाले नवयुवकों ! भारत का भविष्य तुम्हारा भविष्य है, अर्थात् तुम्हारी भलाई और तुम्हारे देश की भलाई का निर्भर तुम्हीं पर है । कायरों पर ही बहुमत का जादू चला करता है । जनता के विचार और हृदय पर तो सच्चा और जीती जागती आत्मा ही शासन करती है, चाहे बाहरसे नाम मात्र का कोई और शासक क्यों न हो । बी. ए. या एम. ए. के दर्जे तो तुम विश्वविद्यालयों से प्राप्त कर लेते हो, किन्तु कायर और वीर होने के मध्य में स्वयं तुम्हीं को निर्णय करना होगा । बोलो, तुम कौन सी दशा चाहते हो—दास की या जीवन के सम्राट् की ? तुम्हारा ही शक्तिमान और पवित्र जीवन इतिहास का तुलायंत्र (lever) है । न्यूटन का दूसरा गति-नियम यह सिखलाता है कि अन्य वस्तुओं पर जिसकी प्रेरणा से कुछ विकार (परिणाम) उत्पन्न होता है वह शक्ति है। शताब्दियों से अस्वाभाविक घृणा (द्वेष) और उससे भी बढ़कर उदासीनता का प्रभाव हमारे देश के रीति रिवाज और मूढ़ विश्वास के मार्ग पर बराबर पड़ता चला आरहा है । ऐ शिक्षित और सदाचारी नवयुवको ! यह अब तुम्हारा काम है कि जीती जागती शक्तियाँ बनकर इस व्यर्थ वेग को, जिसकी अब आवश्यकता नहीं रही, तुम बदल दो । पुराने आलस्य को पराजित करो । गति के वेग को उधर बदलो जिधर आवश्यकता है । और जहाँ कहीं कमी

हो उसको उक्तवेग से पूरा करदो और साधारण लोगों की चित्त वृत्ति उसी ओर फेरो जिधर उचित हो। इस प्रकार अपना काम करते चलो, करते चलो और अपनी दृढ़ता से इस बात को दिखला दो कि सीली (Seeley) जैसे ऐतिहासकार जो भारतवर्ष को केवल "भविष्यहीन भूतकालिक" बतलाते हैं (अर्थात् जो यह कहते हैं कि भारतवर्ष को जो उन्नति करनी थी उसे वह भूतकाल में कर चुकाहै, अब भविष्य में कोई उन्नति न करेगा) उनको बतला दो कि ऐसा कहने वाले भारी भूल पर हैं। भूतकाल को ढाल कर वर्तमान काल के अनुसार बनाओ, और वीरता के साथ शुद्ध और प्रबल वर्तमानकाल को भविष्य की दौड़ में डालो। अपने पूर्वजों के रिक्थ माल (Inheritance) बिना हम कुछ नहीं कर सकते। जो समाज इस पैत्रिक धन को त्याग देती है वह बाहर से अवश्य नाश होजाती है। पर इस (रिक्थ माल) की अधिकता से भी हम कुछ न कर सकेंगे। वह समाज जिसमें इस बपौती का ख्याल सब पर प्रबल है भीतर से नष्ट होजावगी। क्या तुम्हारा यह विचार है कि तुम में सच्चा जीवन होने से समाज में झगड़ा व फूट उत्पन्न हो जायगी? जमे हुये डटे रहो, चाहे अकेले ही क्यों न हो। फिरो मत, मुँह न मोड़ो, यही मरदानगी (शूरवीरता) है।

गर्चि कुतुब जगह से टले तो टलजाये।
गर्चि बैहर भी जुगनू की दुम से जलजाये॥
हिमालय बाद की ठोकर से गो फ़िसल जाये।
और आफ़ताब भी क़ब्ले-अरूज ढल जाए॥
मगर न साहबे-हिम्मत का हौसिला टूटे।
कभी न भूले से अपनी जबीं पर बल आए॥

यदि तुम सत्य के मार्ग से नहीं हटते तो प्रवाह तुम्हारे साथ है, समय तुम्हारी ओर है, क्षेत्र तुम्हारे हाथ है। लोगों को पिछली महिमा पर उछलने दो, अगली महिमा सबकी सब तुम्हारी है।

राष्ट्रः—क्या वह मेल जो सच्चाई के लिये न हो राष्ट्र को बचा सकता है? क्या लोगों को अंधकार में रखकर तुम उनमें मेल उत्पन्न करसकते हो? क्या प्रमाद और अंध विश्वास की स्वीकृत दासता से राष्ट्र में ऐक्य लाया जासकता है? अच्छा मान लो, कि सबके सब मल्लाह एक ही ओर खेने लगें, पर वह रुख उलटा हो, अर्थात् वह रुख उन्नति व सच्चाई का मार्ग न हो, तो क्या वह आपको पसन्द होगा? ऐसी नाव तो बहुत शीघ्र किसी चट्टान से टकरा कर टुकड़े टुकड़े होजायगी, और कदाचित जितनी शीघ्र टूटे, उतना ही अच्छा। (शारीरक) मिलाप तो केवल स्वर्ग में ही संभव है। परन्तु केवल पवित्रता और सच्चाई में मिलाप यहाँ हो सकता है। ऐ राष्ट्रीय एकता के चाहने वालो! राष्ट्र को पहिले अनन्त अमानुषिक भ्रान्तियों से मुक्त करो। यदि मनुष्यत्व, सच्चाई और उन्नति के लिये आज सर्व साधारण कष्ट पारहे हैं और कल काम करने वाले सताये जा रहे हैं, तो इससे स्पष्ट होरहा है कि देश आध्यात्मिक दृष्टि से अभी जीवित है और नीचे ऊपर साँस ठीक ठीक ले रहा है।

यह सच है कि आदर्शवान् आचरण में कोई कष्ट भान नहीं होता क्योंकि वह मूर्तिमान शांति वा सुख है और चारों ओर प्रेम तथा प्रकाश फैला रहा है। परन्तु जिस समाज में प्रकाश का आगमन दुःख का कारण माना

जाता है, उसमें दुःख रहित शांति और जागृति लानेवाला प्रकाश दोनों एक साथ कैसे रह सकते हैं ? सो यदि किसी विशेष दशा में तुम आदर्श के अनुसार आचरण नहीं कर सकते, तो जितना कर सको वह सच्चा तो हो। इसी की अत्यन्त कमी और जरूरत है। किसी देश को शक्ति या बल छोटे २ ख्याल वाले बड़े २ मनुष्यों से नहीं बल्कि बड़े बड़े ख्याल वाले छोटे २ मनुष्यों से मिल सकता है।

शान्ति ? क्या पाशवी निद्रा (तन्द्रा) में शान्ति रक्खी है ? क्या दुर्गन्धयुक्त कब्र में शान्ति है ? हम तो जीती जागती शान्ति चाहते हैं, न कि निर्जीव। लोग तो अँधेरे में गिर गिर पड़ते हों और तुम प्रकाश को बर्तन में छिपा रक्खो, ऐसे प्रकाश से तो यह अच्छा होता कि तुम्हारे पास प्रकाश बिल्कुल न होता। जो व्यक्ति ऐसे अवसरों पर अपने कर्त्तव्य को छोड़ कर यथा शक्ति सहायता पूर्ण शब्द कहने से पीछे हटता है और चुपचाप रहता है वह वास्तव में दोषी है।

(ख) अब हम जन संख्या के प्रश्न की ओर आते हैं:—

जन संख्या के विषय पर जो कुछ मालथस (Malthus) व अन्य अर्थ शास्त्रज्ञों ने कहा है उस के ऊपर विचार करने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। मालथस तो केवल जीवच्छास्त्र (Biology) के मत या निर्णय को दुहराता है। आओ, ज़रा देखें कि प्रकृतिवादी (Naturalists) लोग इस विषय में क्या कहते हैं। हक्सले (Huxley) नई आबादी (बस्ती) या जाति या समाज की तुलना उस बाग़ से करता है जो अपने आप उगे हुये जंगल के अन्तर्गत है। सामाजिक उन्नति का क्रम (Process of social

evolution) या जिस को हेक्सले आचार सम्बन्धी क्रिया (Ethical process) भी कहता है उद्यान विद्या के (Horticultural process)के क्रमके बहुत तद्वत् है । किन्तु ये दोनों क्रम स्वच्छन्द वा स्वतन्त्र सृष्टि-क्रम (Wild nature or cosmic process) के नितान्त विपरीत हैं। स्वच्छन्द सृष्टि-क्रम की विशेषता यह है कि इसमें जीवन (स्थिति) के लिये प्रचण्ड व निरन्तर द्वंद मचा रहता है । उद्यान विद्या और आचार सम्बन्धी क्रिया इस झगड़े की जड़ उखाड़ती हैं, अर्थात् उन कारणों को दूर कर देती हैं कि जिन से ऐसा झगड़ा उत्पन्न होता है । हेनरी ड्रमण्ड (Henry Drummond) दोनों क्रमों की तद्रात्मकता सिद्ध करने का बड़ा भारी प्रयत्न करता है, किन्तु इस हल्ला गुल मचाने पर भी वह उन परिणामों से जो डारविन और हक्सले ने निकाले हैं एक पग या इञ्च भर आगे नहीं बढ़ सका, और न उसको इस बात से इन्कार होसका (जो कभी किसी व्यक्ति को भी जिस के होश हवास ठीक हैं कदापि अस्वीकार नहीं हो सकता था) "कि यदि माली स्वयं उत्पन्न होने वाली घास फूस को बराबर उखाड़ता न जाय और इसकी अधिकता रोकने के लिये बराबर निराई इत्यादि न करता रहे, तो शीघ्र ही वही स्वच्छन्द सृष्टि-क्रम (Wild process) बाग़ में फिर अपना सिक्का जमा लेता है और फिर संहार करने लग जाता है, अर्थात् शान्ति एवं उन्नति के साम्राज्य को हटा कर उसके स्थान पर प्राचीन लड़ाई झगड़े वाले निर्दयी ढंग से उखाड़-पछाड़ मचाता है । जाति या समाज का भी ठीक ऐसा ही हाल है । जिस समय जन-संख्या अपनी सीमा से बढ़ जाती है और यदि उस समय फालतू आबादी के अलग करने का कुछ प्रबन्ध

नहीं किया जाता, तो आए दिन भयानक लड़ाई और झगड़े खड़े होकर शान्ति को दूर करते तथा आचार सम्बन्धी क्रिया का नाश कर देते हैं, और सभ्यता का नष्ट भ्रष्ट करते हैं, बल्कि लोग ईश्वर की आज्ञाओं को मृतपत्र (Dead Letter) समझने लगते हैं। ऐसे कठिन समयों में राष्ट्रों में अधोपतन एवं आचार-भ्रष्टता का प्रारम्भ होना अनिवार्य हो जाता है। रूम, यूनान तथा अन्य किसी देश के अवनति और अधोपतन का मूलकारण यही लोक-संख्या की समस्या थी। आज से बहुत समय पहिले ही से भारतवर्ष जन-संख्या की अत्यन्त बृद्धि की नाज़ुक अवस्था पर पहुँच चुका किंतु हमने अभीतक इस मूल कारण को रोकने का कोई यत्न नहीं किया। इस जगतीतल पर कोई ऐसा देश नहीं जो भारत के बराबर गरीब (धन हीन) हो और साथही साथ जनसंख्या में भी इसके बराबर हो। इस देश में एक साधारण या मध्यम श्रेणी का घर समस्त राष्ट्र की अवस्था का एक आदर्श चित्र है। प्रथम तो आय (आमदनी) ही बहुत कम और फिर प्रतिवर्ष खाने वालों की संख्या-बृद्धि ही नहीं बल्कि निरर्थक एवं निर्दयता-पूर्ण रीति रवाजों की दासता के चुंगल में फँसकर उनमें अनुचित व्यय होता है। जब कि चारा केवल एक या दो के लिये हो और जानवरों की संख्या अगणित हो, तो वे भी तो आपस में लड़ मरते हैं। लड़ाई झगड़े की जड़ को दूर किये बिना यह उपदेश देना कि "लड़ो मत, शांति और मेल रक्खो" उपदेश की हँसी उड़ाना नहीं तो और क्या है। हमारे देश भाई चित्त से भोले भाले और शांत स्वभाव हैं। उनका हृदय निस्संदेह कोमल है। किंतु वे बिचारे स्वार्थ-परता और ईर्षा-द्वेष से

कैसे बच सकते हैं जब शरीर की दुर्बलता और आवश्यकताओं ने उनको विवश कर रक्खा है। यदि जन-संख्या की समस्या बिना हल हुये रह गई, तो राष्ट्रीय एकता और परस्पर मेल मिलाप की बातचीत आकाश पुष्प के समान कल्पनामात्र रहेगी। वैताल की पहेली (विकट प्रश्न) को हल करना ही होगा, नहीं तो हम मरे। जीवच्छास्त्र के नियमानुसार सहानुभूति और निस्स्वार्थता की वृद्धि ऐसे सामाजिक घिराव (अड़ोस पड़ोस) में कभी नहीं हो सकती जहाँ पर प्रति दिन दुःख और पीड़ा हमारे साथियों के सामने खड़ी रहती हैं। ऐ भारतवासियो! देश में ऐसी घनी आबादी और निर्धनता के होते हुये, सहानुभूति, प्रेम और ऐक्य के बढ़ाने की आशा करना केवल निराशा मात्र है। भौतिक-शास्त्र के विद्यार्थी इस बातको जानते हैं कि किसी प्रकारका भी भौतिक पिंड अपनी भीतरी समता उसी समय तक स्थिर रख सकता है जब तक कि उसके परमाणु जिन से वह युक्त है, एक दूसरे से समान दूरी पर रहते हैं। ताकि प्रत्येक परमाणु को नियम बद्ध गति करने के लिये पर्याप्त स्थान मिलता रहे। अब भारतवर्ष के पिंड अर्थात् भारत निवासियों की दशा देखिये। क्या उसका प्रत्येक परमाणु अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति बिना औरों से टकराये हुये तालबद्ध गति कर सकता है? क्या उनको स्वतंत्रता के साथ स्वभाविक गति अनुसार चलने के लिये पर्याप्त स्थान मिलता है? यदि एक के खाने से दस आदमियों को भूखा रहना पड़ता है, तो जातीय (राष्ट्रीय) समता को सुरक्षित रखने के लिये तुम्हें बहुत शीघ्र उपाय करना चाहिये। नहीं तो भारतवर्ष की उन्नति की आशा केवल वन्य प्रकृति के उग्र परामर्श पर निर्भर होगी

जिसकी व्याख्या हमारे ऐसे असाध्य रोगियों के लिये महर्षि वशिष्ठजी ने इस प्रकार की है।—(१) कण्टक, व्याधि, उत्पात, महामारी (२) दुर्भिक्ष (३) प्राणनाशक संग्राम (४) भूकम्प।

बस बुराइयों का अब बहुत वर्णन हो चुका। इस की औषधि क्या है? यह कई प्रकार की है (१) इस अन्ध विश्वास को कि "भारत वर्ष से बाहर पैर रखना अपने आप को स्वर्ग से वंचित करना है" सदैव के लिये इस भूमि से निकाल देना चाहिये। और तब जिनका यहाँ पर निर्वाह नहीं हो सकता उनको चाहिये कि इस भूमि को छोड़ कर बाहर जा बसें। कुएँ के मेंढक बनने में क्या आनन्द मिलता है? क्या तुमको यह बात नहीं सूझती कि तुम स्वयं इस पवित्र भारतवर्ष को अपने लिये एक गला घोंटू काल कोठरी बना रहे हो।

(२) एक समय था जब भारतवर्ष में आर्यों के लिये बहुत सी सन्तान का उत्पन्न करना आनन्ददायक समझा जाता था, किन्तु अब वह समय नहीं रहा, सब उलट पुलट हो गया है। आज कल आबादी (जनता) की दृष्टि से बहुत बड़े कुटुम्ब का होना जी का जंजाल माना जाता है। विचारहीन पुरुष जो अभी तक बच्चा का सा निश्चय पकड़े हुये हैं "कि अपने बच्चों पर ही स्वर्ग की प्राप्ति निर्भर है" उसे जरा आँख खोल कर देखना चाहिये कि वह मरने से पहिले ही भारतवर्ष में अपना घर बहु सन्तान के कारण नरक बना रहा है। अर्जुन का ठीक यही बहाना था कि पुत्रों के द्वारा स्वर्ग मिलता है। श्रीकृष्ण के ख्याल में था जबकि उन्होंने भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में ४२ से ४५ श्लोक तक उन

लोगों को फटकार बताई है, जो भोग विलास पूर्ण स्वर्ग के पीछे मारे मारे फिर रहे हैं ।

इन श्लोकों को ध्यान देकर पढ़िये और उस स्वतंत्रता के भावको जो इनसे प्रकट होरहा है, ग्रहण कीजिये । आओ, इस हानिकारक प्रथा (अर्थात् बिवाह करके संतति उत्पन्न करना और अज्ञानता में जीवन बिताकर बंधन में मरजाना) को जो हमपर बहुकाल से शासन करती चली आती है देश से बाहर निकाल दें ।

हम कभी मुसलमानी शासकों को अपने पतन का कारण समझकर उन्हें कोसने लगते हैं, कभी ब्रिटिश साम्राज्य में दोष निकालने लगते हैं, कभी भारतवर्ष के धर्मों को इस दुर्दशा का उत्तरदायी ठहराते हैं, और कभी शिक्षा परिपाटी को बदनाम करने लगते हैं । संभव है कि इस तरह की छिद्रान्वेषण में हम किसी हद तक ठीक हों, किंतु वास्तविक लाञ्छन तो अपवित्रता के सिर आता है कि जो संसार में सब से पवित्र संबन्ध को, जो बिवाह है, अपवित्र करदेती है, और यह वही संबन्ध है जिससे हम सब भारतवासी उत्पन्न हुये हैं, और जिसने हमको ऐसा बना रक्खा है जैसे हम आज हैं । इस अत्यन्तावश्यक और अति पवित्र प्रथा की ओर अत्यन्त बेपरवाही से, अत्यन्त निर्लज्जता से, और अत्यन्त अशास्त्र बिधि से ध्यान दिया जाता है । जन्मपत्रों का मिलान, ज्योतिषशास्त्र की गिनती, शुभ शकुनों की पहिचान, मंत्रों के गान और असीम पवित्र रीति के होते हुये भी भारतवर्ष में बिवाह शादी, बुरे समय, अशुभ शकुन से, और अपवित्र होते हैं । कोई भी नक्षत्र ऐसे अशुभ घरों में नहीं ठहर सकते, जहाँ वह देख रहे हों

कि अल्पायु बच्चों के विवाह नक्षत्रों के लग्न और महूर्त के नाम से होरहे हैं। इस दृश्य को जो मनुष्यत्व से विपरीत बल्कि पशुत्व से भी नीचे है देखकर वह भय के मारे काँपने लगते हैं। ऐसे अपवित्र विवाह पर, जो अपना निर्वाह तक नहीं करसकते, उन पति पत्नियों को पवित्र करनेका अपना प्रभाव पवित्र वेद की ऋचाएँ भी खो देती हैं, वरन् उसी क्षण से सदा के लिये निरर्थक होजाती हैं। देश में अयोग्य, कर्तव्यहीन, निकम्मे और परोपजीवी प्रजा के उत्पन्न करने के लिये निर्धनों के विवाह करने वाली प्रथाकी पुण्य-द्रव्य दूषित दुर्गन्ध के सन्मुख किन पुष्पों में ऐसी सामर्थ्य है कि अपना माधुर्य सुरक्षित रख सकें।

नवयुवको! इस प्रथा को रोको, रोको! अय नवयुवको! तुम जो भारतवर्ष के भविष्य के उत्तरदायी हो, इसको रोको! रोको! सदाचार के नाम पर, भारतवर्ष के नाम पर, अपने लिये और अपनी संतान के लिये कृपा करके इस विचार हीन और अशुभ कालके अंधाधुँध विवाहों को जो देश में होरहे हैं, रोको, रोको। ऐसा करना लोगों को पवित्र करदेगा, और आबादी वाली समस्या को भी किंचित हल कर देगा।

क्या तुम ऐसा मानते हो कि ये प्रस्ताव प्रकृति-नियम विरुद्ध हैं। यदि इन आज्ञाओं पर न चलोगे तो प्राण नाशक दुर्भिक्ष और कुचर २ कर मारने वाली मृत्यु तुम्हारा पीछा करेंगे। इसमें अत्युक्ति नहीं। इन शब्दों में तो कठोर घटनाएँ और दारुण वास्तविक तथ्य आवृत हैं। पृथिवी भरमें संसार के किसी सभ्य समाज से पूँछ देखो—क्या बाल बिवाह और बाल बिधवा की दुर्दशा संसार में घोर

प्रकृति नियम विरुद्ध नहीं है? क्या तुम में मनुष्यत्व का कोई परमाणु शेष रह गया है? तब इन अमानुषिक और अप्राकृतिक रीति रवाज के रोके बिना भला तुम्हें कैसे चैन आसकता है? बाल विधवाओं के सुकोमल बाहु सहायता के लिये अज्ञाततः फैले हुये हैं। तुम्हारी आँखों के सम्मुख तुम्हारी अग्निवत् रीति रवाज़ की चिता पर ये जीती जागती सतियाँ जल रही हैं, और उनकी निर्दोष रोती हुई आँखों द्वारा साक्षात भगवति तुम्हारी ओर सहायता के लिये देख रही है। कबतक तुम रोती चिल्लाती भवानी से मुख मोड़े रक्खोगे? यदि तुम कान में कड़ुवा तेल डाल कर बैठ जाओगे, अर्थात् उनके रोने चिल्लाने को कुछ काल तक न सुनोगे, तो वह भवानी भयानक रक्त प्यासी और बदला लेनेवाली चुड़ैल बन जायगी। भवानी की इस दशा को देखकर धरती भी काँप उठती है। लोग शांति शांति पुकारते हैं, किंतु जबतक यह स्वयं बुलाई हुई चुड़ैल (Nemesis) तुम्हारे देश में मौजूद है, तबतक तुम शांति कैसे पासकते हो। क्या तुम इस बात के लिये रुके हो कि ज़रा इस बात को सोच विचार लें और इस समस्या के विषय में सतशास्त्रों को देख भाल लें कि वे क्या कहते हैं? शोक यह तो बिलकुल स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है, रुको मत। भगवान शंकर का उपदेश (जो गीता भाष्य के अध्याय १८ श्लोक ६६ में है) सदैव स्मरण रक्खो कि पवित्र ग्रन्थ और श्रुति उन्हीं बातों के लिये प्रमाण मानी जाती है जिनको ज्ञान के सामान्य प्रमाणों (जैसे प्रत्यक्ष) से हम नहीं जान सकते। वह उद्भट भाष्यकार इस प्रकार कहता है कि "श्रुति केवल उसी बात के जानने के लिये प्रमाण है जो मनुष्य के ज्ञान से परे हैं" आगे बढ़कर आचार्य जी

महाराज इस प्रकार व्याख्या करते हैं:—"चाहे सैकड़ों श्रुतियाँ कहा करें कि अग्नि सर्वदा अंधकार मय होती है, किन्तु इस बिषय में कोई प्रमाण नहीं है। इसलिये ऐसी श्रुति भी अनुकरणीय नहीं।"

योरप में जितने ही नीची श्रेणी के लोग होते हैं, उतने ही शीघ्र उन के यहाँ विवाह आदि होते हैं, किन्तु इसमें संशय नहीं कि जितनी शीघ्र भारतवासियों का विवाह होता है उतनी शीघ्र किसी नीच से नीच जाति का भी वहाँ विवाह नहीं होता। ऊँची जातियाँ ३० वर्ष से पहले कभी भी शादी-विवाह नहीं करतीं। उनका यह ख़याल है कि बच्चे कम हों, किन्तु योग्य हों।

हर्बर्ट स्पेंसर अपने जीवन-शास्त्र के मूल तत्त्व नामी पुस्तक में इस बात को दिखलाता है कि ज्यों ज्यों मानसिक उन्नति अधिक होती जाती है, त्यों त्यों सन्तानोत्पादक शक्ति कम होती जाती है। सन्तानोत्पादक शक्ति को ही जो प्रायः समस्त प्राणियों में रहा करती है, अपना लक्ष्य बना कर हम अपने आप को कब तक इतना नीचा बनाये रक्खेंगे। हमारे यहाँ के शास्त्रों के अनुसार (जो ब्रह्मचर्य का गुण वर्णन करने में कभी उकताते नहीं) कोई भी शक्ति, चाहे शारीरिक हो या मानसिक, पवित्रता के बिना नहीं हो सकती। मानवी पौरुष का वह भाग जिस को मैथुन-क्रियाओं और मैथुन-विचारों में काम-शक्ति कहते हैं, यदि रोका जाय और वश में लाया जाय, तो वह सहज में ओजस और अटूट आत्मिक बल में बदल जाता है।

ऐ ऋषियों की सन्तान! तुम्हें काम-वासनाओं को अपने वश में करना चाहिए। वह मूर्ख जिसने इस पाश-

विक काम पर अधिकार नहीं पाया और प्रकृति के गुरुतर सम्बन्ध अर्थात् स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को खेल-तमाशा समझ रक्खा है उसे नहीं मालूम कि वह सचमुच अपना ही रक्त, अपना ही श्वेत रक्त-जो उसकी जान है, बहा रहा है। समस्त पापों की जड़ इसी दैवी शक्ति का अनुचित प्रयोग है. जैसे कुपात्र के पास धन-सम्पत्ति (अर्थात् अनुचित स्थान पर द्रव्य) कूड़ा-कर्कट ही है। काम वासना को जो पशु-वृत्ति का विशेषण दिया जाता है उस से भी उसका नीचत्व स्पष्ट होता है। पशु निस्सन्देह अधम और मूर्ख हैं, क्योंकि अंधाधुन्ध सन्तति बढ़ाते चले जाते हैं। और उस धड़ाधड़ सन्तान उत्पन्न करने का परिणाम भयानक-युद्ध है, जिस से कलंक का टीका उनके सिर लगता है। फिर भी पशु इस लिये बिलकुल पाप-रहित हैं कि विषय-सुख के लिये वे इस क्रिया को नहीं करते। मनुष्य तो पशुओं से श्रेष्ठ इस लिये माना जाता है कि उसकी वासनायें उसकी बुद्धि के वश में होती हैं। अब जो मनुष्य सन्तान के अंधाधुन्ध उत्पन्न करने में पशुओं की बराबरी करता है, और अनावश्यक तथा अपवित्र विषय-सुख में लिप्त होने से पशुओं से भी अधमतर हो जाता है, कौन सी नीचता और अधःपतन ऐसा है जो उस पर न आय?

पवित्रता, पवित्रता, पवित्रता तो तुम्हें तलवार की धार पर प्राप्त करनी होगी। यदि तुम पवित्रता को प्राप्त न करोगे, तो विकासवाद का निर्दयी पहिया तुम्हें कुचल डालेगा, और समूल नाश कर देगा। आज के दिन तुम्हारी एक मात्र आशा पवित्रता ही रह गई है। जिस प्रकार वन-चरों के बीच विकासवाद की रीति ने निकट-सम्बन्धियों में बल पूर्वक पवित्रता का व्यवहार पैदा कर दिया है,

उसी तरह ऐ भारत के रहने वालो! आज कल की स्थिति इस बात की बड़े वेग से इच्छुक है कि तुम्हारे विचार पवित्र हों, तुम्हारा आचरण पवित्र हो। ऐ भारत वासियो! यदि तुम में इसकी कमी रही, तो तुम बच नहीं सकते। चाहे यह कठिन हो या सहज, तुम्हें तो यह प्राप्त करना ही पड़ेगा। भारतवर्ष के लिये, अपने शरीरों के लिये, अपनी बुद्धि के लिये, अपने धर्म के लिये, इस लोक के लिये, और परलोक के लिये, ऐ भारत निवासियो! तुम्हें तो पूर्ण पवित्र होना ही पड़ेगा। बिना पवित्रता के वीरता नहीं; बिना पवित्रता के प्रीति नहीं, बिना पवित्रता के साहस नहीं, बिना पवित्रता के एकता नहीं, और बिना पवित्रता के शांति नहीं।

शुद्धि बिना नहिं वीरता, नहिं साहस नहिं मेल।
बिन पवित्रता प्रीति नहिं, औ नहिं शांति अमेल॥

शिक्षा—अमेरिका और इँगलैंड के अपढ़ लोग भी हमारे यहाँ के विश्वविद्यालयों के सामान्य अंडर ग्रेजुएटों से अधिक चतुर होते हैं। यह कैसे? उनकी शिक्षा का मुख्य साधन दैनिक सस्ते समाचार पत्र होते हैं। इँगलैंड जापान और अमेरिका में कालेजों से बढ़कर समाचार-पत्र विद्या का प्रचार करते हैं। सरकार और अन्य संस्थाओं का हम इसी लिये धन्यवाद देते हैं कि वे हमारे देश में किसी दर्जे तक शिक्षा फैलाते हैं; किन्तु यह वास्तव में कुछ भी नहीं है। सर्व साधारण की मूर्खता और स्त्रियों की अंधकारमयी भयानक अवस्था का दोष सिवाय हमारे और किसी पर नहीं लगसकता। वह प्राण-भूतशक्ति जो निकृष्ट कर्मों अथवा अकर्मों में व्यर्थ नष्ट हो रही है उसे स्त्रियों की दशा के सुधार में, सर्व साधारण को मूर्खता से निकालने

अर्थात् पढ़ाने में, और अपने आप तथा जाति को जगाने में लगा दो। इस उद्देश की पूर्ति में सबसे पहला और सीधा सादा ढंग जो पकड़ना पड़ेगा, वह देशी समाचार पत्रों की दशा का सुधारना होगा। ऐसे समाचार पत्र निकालो जो सचमुच लाभदायक हों, और उन समाचार पत्रों को जो स्त्रियों तथा सर्व साधारण की समझ में आने योग्य भाषाओं में पहले से मौजूद हैं, उन्नति प्रदान करो। इस ओर पहले भी कुछ प्रयत्न किया गया था किंतु असफलता हुई, क्योंकि उच्च कोटि का शिक्षित विद्यार्थी वर्ग प्रायःदेशी भाषा में लिखे वा छपे हुए ग्रन्थावलोकन से घृणा करता है। तुम्हें अपनी मातृभाषा का सन्मान करना सीखना चाहिये। (Young men's Indian Association) भारतीय नवयुवक-समाज को चाहिए कि सीधी सादी हिंदी भाषा में बल्कि हिन्दी अक्षरों से पंजाबी भाषा में एक पत्र निकालें, और जहाँ तक हो सके, फ़ारसी और संस्कृत के शब्दों को उसमें न आने दें, और उस प्रकार की पद्धति से विरक्त रहें जिसमें वह पूर्ण रूपसे भावको प्रकट न करसकते हों। (Be natural) असली बनो। जैसा ख़याल करते हो वैसा लिखो। किसी की नकल मत करो। कालिज के विद्यार्थी भी उस पत्र में छोटे २ लेख दिया करें। उन आश्चर्य उत्पन्न करने वाले भावों और विचारों को जो तुम्हारे पढ़ने समय उत्पन्न हों, अपनी मातृभाषा में कभी २ प्रकट करने से तुमको पढ़ने वालों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त होगा, यद्यपि दूसरे ऐसा समझेंगे कि तुम्हारा लेख तुम्हारी अपेक्षा पाठकों को लाभ अधिक देताहै। इस काम के लिये किसी बड़े लम्बे चौड़े विचार से तुम्हें अपने को थकाने वा तङ्ग करने की आवश्यकता नहीं है।

इस पत्र के पहिले अंक में हिन्दी की वर्णमाला और वर्णों की सरल मिलावट से घरेलू शब्द होने चाहिए, और कालेज के भाग्यमान् विद्यार्थियों को, जो देश में ज्ञान और शिक्षा फैलाने के लिये मार्गदर्शक (pioneers) हैं, चाहिए कि इस आदरणीय कर्तव्य को अपने ज़िम्मे लें; अर्थात् अपनी बहनों, माताओं, स्त्रियों, लड़कियों और अन्य सम्बन्ध वाली स्त्रियों को, जो लिख-पढ़ नहीं सकतीं, लिखना-पढ़ना सिखलायें। सार्वजनिक पाठशालाओं अर्थात् सरकारी मदर्सों की प्रतीक्षा में बैठे न रहो। यह आदरणीय ज़िम्मेदारी तुम्हारे ही ऊपर है।

यदि भारत वर्ष को जीवित रहना है, तो स्त्री-शिक्षा का अत्यन्त विस्तार के साथ प्रचार करना पड़ेगा। तब फिर तुम्हारे ही हाथों से यह काम क्यों न आरम्भ हो। इस बात को देखो, कि अपने प्रान्त में कोई स्त्री या ग़रीब मनुष्य अपढ़ न रहने पावे। देश के मुख से इस कलंक के टीके को मिटा दो। क्या तुमको अपने पड़ोस की भंगिन को पढ़ाते हुए भय वा लज्जा मालूम होती है ? यदि ऐसा है तो तुम्हारी सभ्यता और सदाचार पर धिक्कार ! ग़रीब और अपढ़ लोगों के पास मातृवत् सहानुभूति और प्रेम के साथ पढ़ाने के लिये जाओ। यह कैसा देवताओं का सा काम है। भारतीय नवयुवक समाज के पत्र में शारीरक-शास्त्र (Physiology) भौतिक शास्त्र (Physics), अर्थ शास्त्र (Political economy), ज्योतिष शास्त्र (Astronomy), इतिहास (History), मानस शास्त्र (Psychology), इत्यादि अन्य विद्याएँ एक अत्यन्त मनोरंजक और सरल रीति में जैसे तुम लिख सकते हो, धीरे-धीरे स्थान पावें, और फिर धीरे-धीरे भाषा की पद्धति भी अधिक श्रेष्ठ बनाई जाय।

राम इस पर्च के लिये हिन्दी अक्षरों की सिफ़ारिश करता है, क्योंकि बहुत शीघ्र हिन्दी भारत वर्ष की राष्ट्रीय भाषा हुआ चाहती है। स्त्रियों और ग़रीबों का शिक्षा देना हमारे लिये बड़े महत्व का काम है, और यह वह काम है कि यदि पूर्ण रीति से किया गया तो हम को अन्ततः भारी उन्नति तक अवश्य पहुँचा देगा। मगर भूलना मत। तुम्हारे लिये एक और काम है जो इससे भी अधिक सीधा सादा और अत्यन्तावश्यक है। वह यह है कि समुन्नत देशों में जाकर कृषि-विद्या, कला, कौशल तथा व्योपार को सीखो और उस लाभदायिकी विद्या को समस्त भारतवर्ष में फैला दो।

भोजन—भोजन का प्रश्न भी बड़ा ही आवश्यक है। मस्तिष्क और शरीर की शक्तियाँ उसी समय पूरा-पूरा विकास पा सकती हैं जब खान-पान के प्रश्न पर उचित ध्यान दिया जाय।

जैसा खावे अन्न, तैसा होवे मन।
जैसा पीवै पानी, वैसी होवे वाणी॥

यदि तुम्हें अपनी शक्ति के मुख्य कारण अर्थात् भोजन का पूरा ज्ञान प्राप्त हो, तो समस्त अनुचित थकावट दूर और शक्ति की कमी भरपूर हो सकती है। क्या खाना चाहिए? और कैसे खाना चाहिये? इस विद्या को विज्ञान की दृष्टि से आप जानिए। और फिर स्त्रियों को जो हम को खिलाती हैं, खान-पान का तत्त्वज्ञान आप बतलाइये। यह बड़े शोक की बात है कि भारत वर्ष के शिक्षित पुरुषों ने अत्यन्त बलबर्धक (पुष्टिदायक) खान-पान का प्रश्न बिना हल किये छोड़ दिया, और यह और भी लज्जा की बात है कि विज्ञानविद् लोग भी भोजन के साथ कभी-कभी

औषधियों और अलकोहल आदि का प्रयोग करते हैं, और इससे कुछ अधिक नहीं जानते हैं।

धर्म—क्या इस पत्र ने तुम्हारे धैर्य को थका दिया, और क्या तुम उकता गए? चाहे उकता गए हो या नहीं, ठहरो, जबतक वह एक बात जो राम जानता है, तुम से कह न ले, तुम्हें कहीं जाने न देगा। ऐ बरानियों! क्या तुम्हें कहीं बड़े आवश्यक काम पर जाना है? अस्तु, किन्तु यह पुराना कर्णधार (मल्लाह) तुम्हें उस समय तक न छोड़ेगा जब तक कि वह एक बात जिस के कहने के लिये यह जन्मा है, तुम से कह न ले। कोई और कर्तव्य राम का सन्देशा सुनने से बढ़कर आवश्यक हो नहीं सकता।

घरेलू, सामाजिक, या राष्ट्रीय कर्तव्य तुम्हारे कर्मकाण्ड हैं, और कोई भी शुभ कर्म अँधेरे में नहीं किया जा सकता है। हाँ, अंधेरखाता हो अँधेरे में हो सकता है। "Deeds of darkness are committed in the dark." । श्रद्धा वा निश्चय की ज्वाला जगाये रखे बिना और दहकते हुए ज्ञान दीपक को हृदय में लाए बिना तुम कुछ नहीं करसकते, एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। यह समस्त आज्ञायें और सविस्तर सूचनायें जो प्रति दिन तुम्हारे कानों में फूँकी जाती हैं, यह आप के जीवन का बाह्य शरीर हैं। किन्तु बिना आत्मा के कोई शरीर कदापि ठहर नहीं सकता। समस्त सफल आन्दोलनों का प्राण (Spirit) एक जीता जागता विश्वास (निश्चय) और प्रज्वलित ज्ञान है। बड़े-बड़े नामी देहात्मवादी (जड़वादी), अनीश्वर वादी, प्रत्यक्ष वादी, नास्तिक और अज्ञेयवादी (Agnostics) लोगों तक की भी सफलता इसी

धर्म की स्फूर्ति के कारण जो उनमें मौजूद थी, दृष्टिगोचर हुई है, यद्यपि उनको इसका ज्ञान न था। धर्म के प्रचारकों की अपेक्षा इन में से कुछ लोगों के आचरण में धर्म अधिक पाया जाता है। देखो, यहां एक रबड़ का कारखाना है। यह रबड़ का कारखाना हज़ारों वरन् लाखों बेकारों की जीविका चलाता है। ये लोग राष्ट्रीय व्यवसाय को चला कर देश में रुपया इकट्ठा करते हैं, गरीब तथा मिहनती लोगों का ढाढस बाँधते हैं, और जहाज़ी कम्पनियों, रेल के नौकरों, डाक आदि के लिये बहुत सा काम निकालते हैं। तौ भी यह सब ठाठ बाट कैसे हो सकता यदि एक-एक रसायन समीकरण और भीतरी प्रतिक्रिया (One Chemical equation और one Inner reaction) से इसे गुरुत्व वा महत्व न मिलता। बस जबतक कि भीतरी प्रतिक्रिया उत्पन्न न हो, जबतक हृदय में परिवर्तन उत्पन्न न हो, जबतक अन्तःकरण की शुद्धि वा मानसिक समीकरण न हो, जबतक ईश्वर-भाव में प्रवृत्ति और देह भाव से निवृत्ति न हो; तब तक उनके प्रसाद बिना तुम्हारा कोई काम चाहे निजका, चाहे घरका और चाहे सामाजिक, चाहे राजनैतिक, चल नहीं सकता। हृदय या चित्र में प्राण डालदेने वाला कारलाइल (Carlyle) इस तरह लिखता है कि " विश्वास एक बड़ी भारी वस्तु है। प्रत्येक जाति का इतिहास अपने ही विश्वास के अनुसार हरा भरा, आत्म-विकासी और उत्तम होता है। अरबवालों में एक व्यक्ति हज़रत मोहम्मद ने देखो एक शताब्दी में क्या क्या कर दिखाया, मानो एक लुप्तनाम मरुस्थल पर एक चिनगारी आ पड़ी और उससे बालू के कण बारूद के छर्रे बन गए, और दिल्ली से ग्रीनाडा तक आकाश को उड़ा धुवाँ धार करदिया। "ला इलाह इल्लिल्लः"

अर्थात् सिवाय परमेश्वर के और कुछ है ही नहीं, और "अल्लाहू अकबर" ईश्वर से महान और कुछ नहीं।

जो कुछ सचमुच बड़ा है। वह हमारे अन्तःकरण के अकथनीय गूढ़ भावों से प्रकट होता है। अव्यक्त गहराई से निकला है। जो कोई पूर्ण रीति से ब्रह्म विचार में नहीं रहता तथा आंशिक रूप से इन विचारों में रहकर पूर्ण रूप से उसमें रहने का प्रयत्न नहीं करता; वह चाहे जहाँ रहे और जिस प्रकार के आडम्बर में रहे, काल के मुख में है, वह जीवित नहीं है वरन् मृतक है।

हरबर्ट स्पेंसर तक अपने उस अंतिम ग्रन्थ में (जिस को उसके मृत्यु प्राप्त राजहंस का गीत कह सकते हैं) हक्सले के उस अनुभव का जो उसने बड़े मस्तिष्क वाले सूस जलचर के साथ किया था, हवाला देते हुये यों कहा है कि "हमारी चित्त-शक्ति (thought consciousness) में वेदना अर्थात् अनुभव करने वाली शक्ति (feeling) भी सम्मिलित है, यद्यपि उसके बाह्य रूप से केवल वही शक्ति दिखलाई पड़ती है जिसको हम मनीषा या बुद्धि (intellect) कहते हैं। वह भाग (वेदना शक्ति) जिसको हम मन के विषय वार्तालाप करने में प्रायः उड़ा देते हैं, वह उसका आवश्यक अंश अर्थात् अनुभव करने की शक्ति या चेतना है। यही शक्ति या चेतना स्वामी है और बुद्धि दासी है।" इस वेदना अर्थात् अनुभव करने वाली शक्ति को साधारण लोग 'हृदय' कहते हैं, जो विश्वास और धर्म का स्थान अर्थात् निश्चय और ईमान का मकान है। यही शक्ति कार्य के लिये उभारती वा उत्साहित करती है, और कार्य को पूर्ण करने के लिये बल देती है। स्पेंसर साहब फिर यों कहते हैं कि "नौकर

(मस्तिष्क, दिमाग़ वा बुद्धि) को उन्नति देने और मालिक (हृदय) को योंही पड़ा रहने देने से कुछ काम नहीं निकलेगा।" ओहो! किस सौंदर्य के साथ इस सुप्रसिद्ध नास्तिक का निकाला हुआ परिणाम आज कल के अत्यन्त सुयोग्य अन्तःकरण शास्त्र (Psychology) के ज्ञाता आचार्य जेम्स महोदय के इस वर्णन से मेल खाता है कि "धार्मिक अनुभव ऐसे ही विश्वास दिलाने वाले होते हैं जैसे कोई सीधे इन्द्रिय-जन्य प्रत्यक्ष अनुभव होते हैं; बल्कि प्रायः ये अनुभव उन सिद्धान्तों से भी जो तर्क शास्त्र के तर्कों से सिद्ध हों, कहीं अधिक निश्चय कराने वाले होते हैं।" इस मौखिक वार्तालाप की तह के नीचे अपनी प्रकृति के गहरे तल पर रहना, अपने अस्तित्व की गहराई को नापना, उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना और अपने भीतरी तत्त्व को जो वस्तुतः प्रकृति का भी तत्त्व है, अनुभव करके आप ही वह तत्त्व बन जाना बल्कि तत्त्वमसि का एक जीता जागता अवतार बनना:—

यह, यह है ज़िन्दगानी, ताक़त की है निशानी ।
खम्भों को फाड़ती है, हाँ यह नहीं है फानी ॥

१—दुनियाँ हट दूर परे, अब तो मैं जाग उठा हूँ ।
नूर रोशन हूँ मैं, तारीकी ! तू हट दूर परे ॥

२—हो ख़बरदार पहाड़ो, मेरे रास्ते से हटो ।
वरना डालूँगा कुचल, हाड़ और पंजर सारे ॥

३—ऐ सलातीन वज़रा, जो हो खिलौने मेरे ।
लाईन क्लीअर करो, इस नूर मुजस्सम के लिये ॥

४—तोप और गोले से हूँ ढिंढोरा पीटूँ।
क़िस्मत और देवता हैं रथ पै मेरे बंधे ॥

५—माया! तू हट दूर परे, अब तो मैं जाग उठा हूँ।
जाग जाग, और हो आज़ाद, ऐ प्रकाश मेरे ॥

उक्त पदों की अंग्रेज़ी कविता व्याख्यान के अन्त में ऐसे है।

(1)—The world turns aside,
To make room for me;
I come, blazing Light!
And the shadows must flee.

(2)—O mountains, Beware!
Come not in my way,
Your ribs will be shattered
And tattered to-day.

(3)—O Kings and Commanders!
My fanciful toys!
Here's Deluge of fire,
Line Clear! my boys.

(4)—I hitch to my chariot,
The fates and the Gods,
With thunder of Cannon,
Proclaim it abroad.

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

जातीय धर्म

सूर्यास्त होने का समय है। ठण्डी साँसें भर-भरकर मैं गुनगुना रहा हूँ। लिखते समय मेरी आँखों से आँसू बह रहे हैं—

"So many sects, so many creeds,
So many paths that wind and wind,
While just the art of being kind,
Is all the sad world needs."

"I saw a vision once,
and it sometimes reappears;
I know not if 'twas real,
for they said I was not well.
But often as the sun goes down,
my eyes fill up with tears,
And then that vision comes,
and I see my Florid (India).

The day was going softly down,
the breeze had died away;
The waters from the far West
came slowly rolling on.

The sky, the clouds, the ocean-
wave, one molten glory lay;
All kindled into crimson
by the deep red sun.

As silently I stood and gazed
before the glory passed,
There rose a sad remembrance
of days long gone;
My Youth, my childhood came again,
my mind was overcast,
As I gazed upon the going down
of that red sun.

The past upon my spirit rushed,
the dead were standing near,
Their cheeks were warm again with life,
their winding sheets were gone;
Their voices rang like marriage-bells
once more upon my ear;
Their eyes were gazing there
with mine on that red sun.

Many days have passed since
then, many chequered years;
I have wandered far and wide,
still I fear I am not well;

For often as the sun goes down,
my eyes fill up with tears,
And then that vision comes,
and I see my Florid. (India.)

शिखरिणी छन्द ।

अनेकों पंथी हैं, बहुत मत भी हैं जगत में,
अनेकों धर्मी हैं प्रसरित चतुर्दिक भुवन में,
अपेक्षा तो भी है दुःखित जग को एक गुण की—
बता देवे कोई सदय बनने के यतन को ।

बहरे-तवील

दृश्य जो एक दफा लखा आँख से, वह कभी सामने मेरे आ जाता है ।
ज्ञात मुझको नहीं वह था सत् या असत्, क्योंकि अस्वस्थ था मैं कहा जाता है ॥
किंतु बहुधा दिवाकर के छुपते समय लोचनों में सुजल मेरे भर आता है ।
और तब दृश्य आता पुनः मोदमय, मेरा भारत दुलारा नज़र आता है ॥१॥

मद गति से इधर ढल रहा था दिवस, चाल धीमी हवा ने उधर ली पकड़ ।
पश्चिमी सिंधु में दूर से आगे बढ़, धीरे धीरे तरंगें रही थीं उमड़ ॥
मेघमाला, गगन और सागर-तरंगों का संम्मिश्र सौंदर्य दिखलाता था ।
और गंभीर आरक्त दिनकर-छटा से सुलाली लिए दृश्य दिखलाता था ॥२॥

मैं खड़ा चुप रहा देखता दृश्य को, लुप्त जबतक न वह आँख से हो गया ।
तब गये दूर दिनकी हुई सुध मुझे, दुःखमय भाव सारा उदय हो गया ॥
मेरा शिशुपन, जवानी मुझे याद आते ही मनमें उदासी मेरे छा गई ।
देखता मैं रहा जबकि अस्तमित लाल रविको दया सी मुझे आ गई ॥ ३ ॥

भूत युग जल्द मेरे निकट आगया, पास मृतकों का मजमा खड़ा हो गया।
उनके उतरे कफन, प्राण आए, तो गालों का रंग उनके फिर लालसा होगया॥
बिवाह बाजों सी उनकी सुरीली सदा, एकदा मेरे कानों में आने लगी।
लाल रविकी तरफ उनकी आँखें मेरी आँखके साथ नज़रें मिलाने लगी॥४॥

बीते तबसे बहुत दिन तथा दुःख सुखमय बरस भी बिताए अनेकों कहीं।
दूर तक मैं चतुर्दिक फिरा घूमता, हूँ मैं अस्वस्थ, संशय गया ही नहीं॥
क्योंकि जब प्रायः सूर्य है डूबता, अश्रु-जल आँख में मेरे भर आता है।
और तब दृश्य आता पुनः मोदमय, मेरा भारत दुलारा नज़र आता है॥५॥

ऐ अस्ताचल-गामी सूर्य! तू भारत-भूमि पर निकलने को जा रहा है। क्या तू कृपा करके राम का यह संदेशा उस तेजोमयी प्रतापी माता की सेवा में ले जायगा? क्या ही अच्छा हो, यदि यह मेरे प्रेम-पूर्ण आँसू भारत के खेतों में पहुँच कर ओस की बूँदें बन जाँय। जैसे एक शैव शिव की पूजा करता है और वैष्णव विष्णु की, ईसाई ईसा की और मुसलमान मुहम्मद की; वैसे ही मैं प्रेमाग्नि में निमग्न चित्त से भारत को शैव, वैष्णव, बौद्ध, इसाई, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, सन्यासी, अछूत, इत्यादि भारत सन्तान के प्रत्येक बच्चे के रूप में देखता और पूजता हूँ। ऐ भारत माता! मैं तेरे प्रत्येक रूप में तेरी उपासना करता हूँ, तू ही मेरी गंगा है, तू ही मेरी कालीदेवी है, तू ही मेरी इष्टदेवी है, तू ही शालिग्राम है। भगवान् कृष्णचन्द्र जिनको भारत की मिट्टी खाने की रुचि थी, उपासना की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जिनका मन अव्यक्त की ओर लगा हुआ है, उनके लिये बहुत सी कठनाइयाँ हैं क्योंकि अव्यक्त का रास्ता प्रत्येक के लिये अत्यन्त कठिन है।

अत्यन्त ही कठिन हो जायगा। भारतवर्ष की भौतिक अवनति भारत का धर्म एवं परमार्थ निष्ठा का दोष नहीं है। वरन् भारत की विकसित और हरी भरी क्यारियाँ इसलिये लुट गयीं कि उनके आस पास काँटो और झाड़ियों की बाड़ नहीं थी। काँटो और झाड़ियों की बाड़ अपने खेतों के चारों ओर लगा दो, किन्तु उन्नति और सुधार के बहाने से सुन्दर गुलाब के पौधों और फलवाले वृक्षों को न काट डालो। प्यारे काँटो और झाड़ियो! तुम मुबारिक हो, तुम ही इन हरे-भरे लहलहाते हुये खेतों के रक्षक हो, तुम्हारी इस समय भारतवर्ष में बहुत ज़रूरत है।

जब राम शूद्रों के परिश्रम की महिमा करता है तो इससे यह प्रयोजन नहीं कि राम तमोगुणको रजोगुण और सतोगुण से अच्छा समझता है; वरन् असली तात्पर्य यह है कि भारत में चिरकाल से हम तमोगुण से घृणा करते आये हैं और घृणाकी क्रिया से ही तमोगुण हम में बेहद बढ़गयाहै। अब हमको चाहिये कि तमोगुण का उपयोग करना सीखें और उसको लाभ दायक बनायें।

भला बाग बगीचे क्योंकर उग सकते हैं, यदि हम कूड़ा कर्कट बाहर फेंकदें और उसका सदुपयोग न करें।

तमोगुण रूपी कोयले के बिना रजोगुण रूपी अग्नि एवं सतोगुण रूपी प्रकाश नहीं होसकता। और जिस देश में कोई आन्दोलन उत्पन्न करना हो, तो उसमें तमोगुण रूपी कोयला जितना अधिक होगा उतनी ही राजसी अग्नि और सात्वकी प्रकाश अधिक बढ़ेगा। यह खयाल वर्तमान सामुद्रिक शास्त्र (Phrenology) के सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल है। जिससे स्पष्ट है कि शूरवीरता और आचरण

बल के लिये केवल सदाचार और मास्तिष्किक शक्तियों का विकास ही पर्याप्त नहीं है, वरन् मनुष्य में तमोगुण या पाशविक शक्ति भी पूर्ण रीति से होनी चाहिये । यही कारण है कि हिन्दू लोग महादेव जी को तमोगुण का मालिक वा शासक मानते हैं ।

यदि हम भारतवर्ष के इस विपत्ति-ग्रस्त समय में उत्पन्न हुए हैं, तो हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए, क्योंकि हमको अपने स्वदेश-भाइयों की सेवा करने का खूब अवसर मिला है । हमें जो काम मिला है वह बहुत ही निराला, सुरीला और गतिशील (Dynamic) है । यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो खूब सोता है वह खूब जागता है । भारतवर्ष खूब सोया, इसलिये इसकी जागृति भी खूब होगी । अब हमको भारत के पुत्रों में गुण ग्रहण करने का स्वभाव, भ्रातृभाव, संयोग की वृत्ति, यथा योग्य कार्य विभाग और परिश्रम की श्रेष्ठता उत्पन्न करनी चाहिये । केवल छिद्रान्वेषण से काम चलना दुस्तर होगा ।

ओह ! इस देश की कितनी शक्ति भिन्न २ संप्रदायों के परस्पर गाली-गलौज देने में नष्ट हो रही है । हमें उन सिद्धान्तों का पता लगाना चाहिए जिनमें हम सब सहमत हैं, और उन्हीं पर ज़ोर देना चाहिये । कुछ मनुष्यों पर आर्य-समाज का ही प्रभाव हो सकता है, सनातन धर्म का नहीं; कई ऐसे हैं जिन्हें ब्रह्म-समाज ही अच्छा मालूम होता है; किसी को वैष्णव-धर्म ही प्यारा है; इसी तरह हमें क्या अधिकार है कि हम उस मनुष्य को बुरा-भला कहें जो हमारी प्रथा के अनुसार आचरण नहीं करता, और जो हमारी शैली पर चलने से शक्ति और आनंद की आशा नहीं करता । जो हमारे साथ आना चाहते हैं, वह आवें,

जो ठहरना चाहें, वह ठहरें, और जो न ठहरना चाहें वह न ठहरें। संसार कुछ कहे, हमें इसकी चिन्ता नहीं। हमें या तुम्हें क्या अधिकार है कि हरेक को अपने संप्रदाय में ही सम्मिलित कर लें। मेरा काम तो प्रत्येक की सेवा करना है, अर्थात् उनकी भी सेवा जो मुझ से प्रेम करते हैं और उनकी भी जो मुझसे द्वेष करते हैं। माता उन्हीं बच्चों को अधिक प्यार करती है जो अधिक दुर्बल और कृश होते हैं। क्या वह सब लोग जो तुमसे सहमत नहीं हैं, भ्रांति में पड़े हुए हैं? महा कठिनता से यदि हम यह कल्पना कर भी लें कि ऐसा ही है, तो इनकी भी देश के लिये अत्यंत आवश्यकता है। ऐसे चलने वाले मनुष्य की क्या दशा होगी जो केवल एक टाँग के बल से फुदकता फिरता है। सच्ची शिक्षा यह है कि प्रत्येक वस्तु को ईश्वरीय दृष्टि से देखा जाय।

O Lord; look not upon my evil qualities!
Thy name, O Lord, is same-sightedness;
By thy touch, if Thou wilt,
Thou cans't make me pure.

One drop of water is in the sacred Jamuna,
Another is foul in the ditch by the roadside.
But when they fall into the Ganges,
Both alike become holy.

One piece of iron is the Image in the temple,
Another is the knife in the hand of the butcher,
But when they touch the philosopher's stone,
Both alike turn to gold.

So, Lord, look not upon my evil qualities!
Thy name, O Lord, is Same-Sightedness,
By the touch, If thou wilt,
Thou canst make me pure.

हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ।
समदर्शी प्रभु नाम तिहारो सोई पार करो ॥
हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ।

इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरो ।
जब दोनों मिलि एक बरन भई, गंगा नाम परो ॥
हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ।

इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो ।
सो दुविधा पारस नहिं राखत, कंचन करत खरो ॥
हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ।

हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ।
समदर्शी प्रभु नाम तिहारो, सोई पार करो ॥
हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ।

हमें अपने व्यक्तिगत और स्थानिक धर्म को राष्ट्रीय धर्म से उच्च पद न देना चाहिये । इनका उपयुक्त स्थान पर रखना ही परम सुख देने वाला है ।

देश और जाति की उन्नति निमित्त काम करना ही आधिदैविक शक्तियों वा देवताओं की पुष्टि करना है । आज भारत-माता के निमित्त इस प्रकार के यज्ञ की आवश्यकता है । गीता के निम्न लिखित श्लोक में आजकल इसी यज्ञ से अभिप्राय है:—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (३-१३)

अर्थ—जो मनुष्य यज्ञ से बचे हुए प्रसाद को खाते हैं, वह समस्त पापों से शीघ्र छुटकारा पाते हैं, किंतु जो केवल अपने पेटको भरने के लिये ही पकाते हैं, वे पापी पाप को भोगते हैं।

ईश्वरानुभव के लिये सन्यासी का सा भाव रक्खो, भारत माता की महान आत्मा से अपनी लघु आत्मा को अभेद करते हुये अपने स्वार्थ का नितान्त त्याग करो। ईश्वरानुभव अर्थात् परमानन्द को पाने के लिये सच्चे ब्राह्मण बनो, अर्थात् अपनी बुद्धि को देश-हित चिन्तन में अर्पण करो। आत्मानन्द के अनुभव के लिये सच्चे क्षत्री बनो, अर्थात् अपने देश के लिये प्रतिक्षण अपने जीवन की आहुति देने को तैयार रहो। परमात्मा को पाने के लिये सच्चे वैश्य बनो, अर्थात् अपनी सारी सम्पत्ति को केवल राष्ट्र की धरोहर समझो। इहलोक या परलोक में राम भगवान या पूर्णानन्द को प्राप्त करने के लिये अपने परोक्ष धर्म को अपरोक्ष रूप (व्यावहारिक) बनाओ, अर्थात् तुमको पूर्ण सन्यास भाव ग्रहण कर सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की शूरवीरता धारण करनी होगी। और जो सेवा पहिले पवित्र शूद्रों का कर्त्तव्य था, उसे अपने हाथ पैरों से स्वीकार करना होगा। अछूत जातियों के कर्त्तव्य पालन में सन्यासी भाव का संयोग होना चाहिये। आज कल कल्याण का केवल एक यही द्वार है।

उठो! जागो! अब सोने का समय नहीं रहा!

आज कल अन्य देश भी जगद्गुरु भारतवर्ष को अपने आचरण से इसी धर्म की शिक्षा दे रहे हैं।

जिस समय एक जापानी नवयुवक को इस कारण से सेना में प्रविष्ट होने से रोका जाता है कि उसके बाद उसकी बूढ़ी माँ की सेवा करने को कोई न रहेगा, तो उस समय बुढ़िया अपने राष्ट्रीय धर्म को अपने व्यक्तिगत और घरेलू धर्म्म पर विशेषता देकर आत्म-हत्या कर लेती है जिससे उसके पुत्र को अपने देश के सम्मान में अपने प्राण न्यौछावर करने का अवसर मिले।

आदर्श स्वरूप, प्रतापी, श्री गुरु गोविन्द सिंह का राष्ट्रीय धर्म के लिये अपने व्यक्तिगत, घरेलू और सामाजिक धर्म को त्याग देने की वीरता के बराबर और क्या वीरता हो सकती है? लोग शक्ति प्राप्त करने के पीछे मरे जाते हैं— किंतु वे यह नहीं समझते कि राष्ट्र की समष्टि आत्मा के साथ अपनी व्यष्टि आत्मा के अभेद करने पर उनके हाथ में कितनी अनन्त शक्ति आजायगी, अंत में, राम इसलाम के पैगम्बर (हज़रत मुहम्मद) के ही मधुर शब्दों में इसी भाव को दर्शाता है।

"यदि सूर्य मेरे दाहिने ओर और चन्द्र मेरे बाईं ओर खड़े होजायँ और मुझे पीछे हटने को कहें, तो भी मैं उनको आज्ञा कदापि कदापि नहीं मानूँगा !" ओम् ओम् ओम्

हम रूखे टुकड़े खाएँगे, भारत पर वारे जाएँगे।
हम सूखे चने चबाएँगे, भारत की बात बनाएँगे॥
हम नंगे उमर बिताएँगे, भारत पर जान मिटाएँगे।
सूलों पर दौड़े जाएँगे, काँटों को राख बनाएँगे॥
हम दर दर धक्के खाएँगे, आनँद की झलक दिखाएँगे।
सब रिश्ते नाते तोड़ेंगे, दिल इक आतम संग जोड़ेंगे॥
सब विषयों से मुँह मोड़ेंगे, सिर सब पापों का फोड़ेंगे।)

(राम

श्रीमद्भगवद्गीता ।

प्रथम भागः—अध्याय ६ पृष्ठ संख्या ८२६ ।

मूल्य मात्रः—साधारण संस्करण २)   विशेष संस्करण ३)

यूं तो आज तक श्रीमद्भगवद्गीता की कितनी ही व्याख्या प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु जिस कारण यह व्याख्या अति उत्तम गिनी जाती है, उसे प्रतिष्ठित पत्रों में ही सुन लीजियेः—

सरस्वती का मत है कि, "स्वामी जी ने इस गीता-संस्करण को अनेक प्रकार से अलंकृत करने की चेष्टा की है। पहले मूल उसके बाद अन्वयांकानुसार प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया गया है। उसके बाद अन्वयार्थ और व्याख्या है। इसके सिवा जगह २ टिप्पणियां दी गई हैं जो बड़े महत्व की हैं। बीच २ में जहां मूल का विषयान्तर होता दिखाई पड़ा है, वहां सम्बन्धिनी व्याख्या लिख कर विषय का मेल मिला दिया गया है। स्वामी जी ने एक बात और भी की है। आप ने प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस अध्याय का संक्षिप्त सार लिख दिया है। इससे साधारण लिखे पढ़े लोगों का बहुत हित साधन हुआ है, मतलब यह है कि क्या बहुज्ञ और क्या अल्पज्ञ दोनों के संतोष का साधन स्वामी जी के उस संस्करण में विद्यमान है; गीता का सरलार्थ व्यक्त करने में आपने कसर नहीं उठा रक्खी।"

अभ्युदय कहता हैः—"हमने गीता की हिन्दी में अनेक व्याख्याएं देखीं हैं, परन्तु श्रीनारायण स्वामी की व्याख्या के समान सुन्दर, सरल और विद्वत्तापूर्ण दूसरी व्याख्या के पढ़ने का सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं हुआ है।

स्वामीजी ने गीता की व्याख्या किसी साम्प्रदायिक सिद्धान्त की पुष्टि अथवा अपने मत की विशेषता प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं की है। आप का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने जो कुछ उपदेश दिया है उसके उत्कृष्ट भाव को पाठक समझ सकें।" आदि अन्य पत्र

लीग से मिलने वाली उर्दू पुस्तकों की सूची।

वेदानुवचनः—इसमें उपनिषदों के आधार पर वेदान्त के गहन विषय को सरल और उत्तम रीति से स्पष्ट किया गया है। मूल्य सादी १) सजिल्द १॥)

कुल्लियाते—राम—या खुमखान—ए—रामः—(प्रथम भाग) इसमें स्वामीराम के उर्दू लेखों का संग्रह है।

मूल्य सादी १) सजिल्द १॥)

रामपत्र या खतूते—रामः—राम के अमूल्य पत्र हैं जो उन्होंने विद्यार्थी अवस्था में अपने गुरु भगत धन्नाराम जी को लिखे थे। मूल्य सादी ॥) सजिल्द ॥।)

रामवर्षाः प्रथम भागः—इसमें स्वामी राम के भजन तथा उसी आशय के भजन हैं। मूल्य सजिल्द ॥।)

रामवर्षा दूसरा भागः—स्वामी नारायण की लिखी हुई विस्तृत जीवनी तथा रामप्रणीत वेदान्तविषयक कविताओं का यह संग्रह है। मूल्य सादी ॥) सजिल्द ॥।)

सभ्यता और परिवर्तन के नियम—इसमें वर्त्तमान युग की सुधारणा की आलोचना की गई है:— मूल्य ।)

स्वामी रामतीर्थ के सुन्दर चित्र—मूल्य एक प्रति ‐) — दस प्रति ॥) — स्वामीराम की बटन फोटो मूल्य ॥)

डाक व्यय सबका अलग।

विज्ञप्ति ।

शीघ्रता कीजिये ! शीघ्रता कीजिये ! ! एक मास से भी कम समय रह गया है। दीपावली सं० १९७८ तदनुसार ३० अक्तूबर सन् १९२१ को श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली का वर्ष समाप्त हो जायगा । तत्पश्चात् वर्तमान वर्ष के शुल्क के अतिरिक्त डाक व्यय भी ग्राहकों को अपने पास से देना होगा। इस लिये अवश्य इसी मास के भीतर २ वर्तमान वर्ष के चारों भागों के ग्राहक हो जाइये। इस सुअवसर को कदापि हाथ से न जाने दीजिए ।

मैनेजर ।